वनस्पति-तन्त्र

(तान्त्रिक-साधना (पदार्थ वनस्पति आदि) के दिव्य तान्त्रिक-प्रभाव का सुस्पष्ट चित्रण करने वाला अनमोल ग्रन्थ-रत्न)

लेखक :
आचार्य पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल

फोन : 0565
ऑफिस : 2405633
मो. : 9412286090

प्रकाशक :

भाषा भवन

हालनगंज, कच्ची सड़क, मथुरा (उ.प्र.)

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक :
भाषा भवन
हालनगंज, कच्ची सड़क, मथुरा

ISBN 81-88522-83-X

अनुवादक :
आचार्य पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल

नवीन संस्करण
2018

मूल्य : 100/-

मुद्रक :
प्रमोद प्रिण्टर्स, मथुरा

आत्म निवेदन

पुरातात्त्विक-शोधों से यह भली-भाँति प्रमाणित हो चुका है कि विश्वभर के सभी देशों की सांस्कृतिक-चेतना का मूल-उत्स, 'भारतीय-अध्यात्म' ही रहा है।

'भारतीय-अध्यात्म' का एक अंग है—'तन्त्र-साधना'! 'तन्त्र-शास्त्रों को भी तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है। वे भाग है—यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र।

● अध्यात्म के अंग 'तन्त्र-शास्त्र' का प्रादुर्भाव ध्वनि-विज्ञान की गहन अध्ययन का परिणाम था, अतः 'मन्त्र-विज्ञान' पूर्णतः ध्वनि (नाद) विज्ञान पर आश्रित है। गोपनीयता इसका विशेष गुण है। 'यन्त्र' विभाग आकृति विज्ञान और अङ्ग-विज्ञान के गहन अध्ययन का परिणाम है, और 'तन्त्र' विभाग—वनस्पति-जगत पदार्थ विज्ञान की शोध और अध्ययन का प्रतिफल है। अध्यात्म के ' तन्त्र-खण्ड का इसीलिए आयुर्वेद के साथ ही अभिभाज्य सम्बन्ध है। अनेक वनस्पतियाँ ऐसी हैं, जो 'आयुर्वेद और तन्त्र' में समान भाव-क्षमता प्रदर्शित करती हैं।

● चूँकि इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य-विषय आयुर्वेद न होकर—'तन्त्र' है, अतः हमने इस ग्रन्थ में केवल उन वस्तुओं के तान्त्रिक-प्रभाव दर्शन ही प्राथमिकता दी है। प्रसङ्गवशात् कुछ आयुर्वेदीय-गुणों का भी उल्लेख हुआ है, यह अलग बात है।

● 'तन्त्र-शास्त्र' में यों तो अनेकानेक वस्तुओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु हमने सर्वथा दुर्लभ और अप्राप्य वस्तुओं का वर्णन न करते हुए—सहज-सुलभ और प्राप्य वस्तुओं को ही अपना वर्ण्य-विषय बनाया है। साथ ही इस बात का भी विशेष ध्यान रखा है कि समग्र 'तन्त्र-शास्त्र' (यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र) में प्रयुक्त होने वाली कोई भी वस्तु रह न जाय।

मुझे तो यह आशा है कि 'तन्त्र-प्रेमियों' के लिए यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, किन्तु यथार्थ निर्णायक तो पाठकवृन्द ही होगा।

—लेखक

विषयानुक्रमणिका

1 वनस्पति-तन्त्र

वनस्पति क्या है ?

पृथ्वी पर प्रकृति ने बहुविधि सृष्टि करके अपनी अद्‌भुत शक्ति-क्षमता और रहस्यमता प्रमाणित की है । अनेक प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे कीट-पतङ्ग आदि सृष्टि प्रकृति की विचित्रता को उजागर करते हैं ।

विज्ञान-वेत्ताओं ने आज से हजारों वर्षों पूर्व ही, सृष्टि का विवेचन करते हुए, समस्त प्राणियों को चार वर्गों में विभाजित किया था । उनकी मान्यता थी कि संसार में चार प्रकार की सृष्टि (जीवधारी शरीर-रचना) होती है । उन्हीं चार वर्गों में सारा संसार आ जाता है । वे चारों वर्ग इस प्रकार हैं :—

1. अण्डज, 2. पिण्डज, 3, स्वदेज और 4. उद्‌भिज ।

अण्डज—वे जीव जो अणडे से जन्म लेते हैं, जैसे—पक्षी, साँप, घड़ियाल और कीट-पतङ्ग । इन जीवों के मुख्य रूप में दो वर्ग होते हैं—1. उड़ने वाले, 2. रेंगने वाले । उड़ने वाले जीवों में पतिंगे और पक्षी आते हैं । रंगने वालों में सरीसृप वर्ग के जीव—साँप, छिपकली, घड़ियाल और गिरगिट आदि । इनकी सामान्य पहिचान यह है कि इनके शरीर में कान का अवयव (श्रवणेन्द्रिय) केवल छेद, के रूरू में होता है, मनुष्य और पशु के जैसे इनके कान ऊपर उभरे नहीं होते । ये सभी उड़ने और रेंगने वाले जीव कान से (कान का ऊपरी भाग-पट) रहित होते हैं । इन्हें कान का छेद भर प्राप्त रहता है, बस ! उसी छेद से ध्वनि इनके मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर इन्हें वातावरण के प्रति सजग करती रहती है । अण्डज प्राणियों की मोटी पहिचान यही है कि इनके कान नहीं होते, भले ही वे शरीर से भारी भरकम होते हों । घड़ियाल, मगर-मच्छ, मगरौठा, गोह, विषकपरी, छिपकली और गिरगिट और साँप-बिच्छू आदि ऐसे ही प्राणी हैं । इसी प्रकार सामान्य पक्षी—गौरैया, लालमुनिया से लेकर सारस और शुतुरमुर्ग तक सभी अण्डज-प्राणी हैं क्योंकि इनके शरीर में कान का अवयव बाह्य रूप में नहीं होता ।

पिण्डज—आरम्भ में पिण्ड रूप में उत्पन्न होने वाले प्राणी 'पिण्डज' कहलाते हैं। मानव-पशु और कितने ही जीव-जन्तु इसी श्रेणी में आते हैं। इनकी वर्गीय भिन्नता इस रूप में पहिचानी जा सकती है कि ये अण्डे से नहीं उत्पन्न होते, माँ के गर्भ से साकार-पिण्ड रूप में हाथ, पैर, सिर, नाक, कान आदि अवयवों सहित जन्म लेते हैं। जो भी जीवधारी—वह चाहे पशु हो अथवा मानव, यदि उसके कर्ण-पटल (कान) बाहर निकले हुए हैं, वे सब पिण्डज श्रेणी में आते हैं। मनुष्य, गाय, बैल, भैंस, बकरी, शेर, भालू, हिरन आदि सब पिण्डज जीव हैं।

स्वदेज—'स्वेद' का अर्थ है—पसीना ? स्वेद अर्थात् पसीने से उत्पन्न होने वाले, विविध कीड़े 'स्वदेज' कहलाते हैं। जूं, चीलर, पिस्सू आदि की गणना स्वदेज-प्राणियों में की जाती है।

उद्भिज—पृथ्वी की तह फोड़कर अंकुर रूप में निकलने वाली सृष्टि 'उद्भिज' कहलाती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह भी प्रणवान् होती हैं। उद्भिज वर्ग में पेड़-पौधे आते हैं। जिन्हें 'वनस्पति' कहा जाता है। पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले सभी पेड़-पौधे लता-गुल्म झाड़ी और घासें सब उद्भिज वर्ग के प्राणी हैं।

तन्त्र-शास्त्र में उद्भिज वर्ग की विभिन्नताओं पर शोध और अनुसंन्धान करके (प्रयोग और परीक्षण करके) जो प्रामाणिक निष्कर्ष घोषित किये गये हैं, वे इतने विस्मयकारी, किन्तु यथार्थ की कसौटी पर खरे हैं कि बुद्धि चकरा जाती है।

प्राचीन महर्षियों ने वर्षों-दशाब्दियों का समय इन वनस्पतियों के परीक्षण में लगाया है। और अन्ततः उनके प्रति पूर्ण आश्वस्त होकर अपने ग्रन्थों में इनकी प्रभावशीलता का वर्णन किया है। वे वनस्पतियाँ यद्यपि बहुत कम रह गयीं हैं, फिर भी जो हैं—उन्हें यदि निर्दिष्ट विधि से प्रयोग करें तो आज भी उनका चमत्कारी प्रभाव सामने आ खड़ा होता है। वनस्पति-विज्ञानियों, तन्त्राचार्यों और आयुर्वेद-मर्मज्ञों ने विभिन्न पेड़-पौधों, लताओं और घासों से सम्बन्ध में छानबीन करके आश्चर्यजनक परिणाम घोषित किये गये हैं।

तन्त्र-शास्त्र में यद्यपि दैवी-शक्तियों की पूजा का विधान है, मन्त्र-जप को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है, यन्त्र-रचना भी इसका एक अङ्ग है, किन्तु सर्वाधिक आवश्यक है—भौतिक-वस्तुओं का प्रयोग ! तन्त्र में किसी न किसी वस्तु को शक्ति-संचय का माध्यम बनाया जाता है, भले ही वह चुटकी भर राख हो, धूल हो, या फूल हो या कोई फल अथवा पत्थर का ढेला हो।

आवश्यकतानुसार, तत्सम्बन्धी विधान से सामंजस्य रखते हुए, यदि निर्दिष्ट वस्तुओं का प्रयोग किया जाय तो अभीष्ट की प्राप्ति अवश्य होती है। यह अभीष्ट किसी भी तरह का हो सकता है—रोग निवारण, धनार्जन, प्रेम-स्थापन, विघटन, उच्चाटन, सम्मोहन और मारण तक ! शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक अथवा दैविक-भौतिक कोई भी समस्या हो, तन्त्र-साधना के द्वारा निश्चित रूप से उसका समाधान किया जा सकता है।

वनस्पतियों का प्रभाव :

हम अपने दैनिक-जीवन मे जितने भी पेड़-पौधे और घासें देखते हैं, सबमें कुछ न कुछ प्रभाव-भिन्नता अवश्य है। बबूल में काँटे हैं, आम का फल स्वादिष्ट है, 'केला' एक अलग रूप-रेखा और स्वाद वाला फल है। गेहूँ, जौ, चना आदि के पौधे—आकार, फल, स्वाद और प्रभाव की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता रखते हैं।

घासों का प्रभाव भी प्रमाणित है। कोई घास जानवरों दूध बढ़ा देती है, कोई उन्हें हृष्ट-पुष्ट कर देती है, कोई दस्ततावर होती है, उसको खाने से जानवर पेचिश और अतिसार से ग्रस्त हो जाता है। एक पौधा है—भाँग ! उसकी पत्ती खाने से नशा होता है। मनुष्य उसके प्रभाव में अपनी वास्तविक विचार-शक्ति, चेतना और सन्तुलन के विपरीत आचरण करने लगता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि प्रत्येक वनस्पति में कोई न कोई प्रभाव अवश्य निहित है। तन्त्राचार्यों ने उनकी खोज करके अनेक प्रकार के प्रयोग निर्धारित किये हैं।

वनस्पति-तन्त्र की उपयोगिता :

वनस्पतियाँ प्राय: सुलभ होती हैं। यहाँ हम 'विकास' के नाम पर प्रकृति की गोद से दूर जा रहे—भौतिक चकाचौंध वाले नगरों की बात नहीं कह रहे, क्योंकि देश की अधिकांश जनता नगरों में नहीं, गाँवों में रहती है। और नगरों की संख्या तो अब बढ़ रही है, गाँव सृष्टि के आरम्भ में ही बस चुके थे। मानव का आदिम समाज गाँवों में ही रहता था। गाँवों में वनस्पतियाँ सहज-सुलभ रहती थी, अत: महर्षियों ने सारे प्रयोग जङ्गलों, ग्रामीण क्षेत्रों में रहकर ही किये हैं। एयरकण्डीशण्ड-कमरे, फोर-फाइव-स्टार होटल और महल, पैलेस उनकी कल्पना में भी नहीं थे। उनका ज्ञान-ध्यान, उनकी तपश्चर्या और उनके शोध परीक्षण—सब या तो उनकी कुटिया में होते थे, या खुले आकाश के नीचे—मैदान, बाटिका, सरिता-तट आदि में।

आज हम डाक्टरों के भक्त हो चले हैं, अन्यथा पहले वैद्य-वर्ग हमारी शारीरिक-व्याधियाँ दूर करता था। छोटे गाँवों में जहाँ वैद्य नहीं होते थे, ग्रामीण लोग ही तन्त्रोपचार से सारे-रोग विकार दूर कर देते थे। भले ही वे पढ़े-लिखे नहीं होते थे, आज के 'डिग्री-डिप्लोमा' उस समय कल्पना में भी नहीं आते थे। लेकिन लोगों की धारणा-शक्ति प्रबल थी, जो कुछ एक बार देख-सुन लेते—जीवनभर याद रहता था। वे बुजुर्गों से, साधु-महात्माओं से या वंश-परम्परा से—कहीं न कहीं कुछ तान्त्रिक जानकारी अवश्य प्राप्त कर लेते थे, और उसके सहारे आवश्यकता पड़ने पर तात्कालिक उपचार, समस्या का समाधान कर देते थे।

आज हम पश्चिमी-सभ्यता, भौतिक जड़ विज्ञान और नास्तिकता के व्यूह में अपनी मानसिकता विकृत कर चुके हैं, इसलिए न तो तन्त्र पर विश्वास करते हैं, न उसका ज्ञानार्जन और उपयोग आवश्यक मानते हैं। किन्तु यह शास्त्र सर्वथा विज्ञान सम्मत, प्रामाणिक, साधार और निश्चितरूपेण प्रभावशाली है। आवश्यकता है, इसके समुचित अध्ययन, मनन और धैर्यपूर्वक प्रयोग की। आगे हम वनस्पति-तन्त्र पर कुछ ज्ञातव्य-तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं।

2 बाँदा

सामान्य-परिचय :

'बाँदा' एक वनस्पति है, जो भूमि पर न उगकर किसी वृक्ष पर उगती है। इस प्रकार यह एक परोपजीवी पौधा है, जो किसी पौधे (पेड़) पर उगकर उसी के तत्त्वों से अपना पोषण करता है। आम, जामुन, महुआ आदि पेड़ों पर इसे सरलता से देखा जा सकता है। इसके पत्ते हरे, मोटे, कड़े और आकार में कुछ लम्बे, गोलाईयुक्त होते हैं। बाँदा की लकड़ी गाँठदार, छोटी और खुरदरी होती है। इसके फूल बहुत सुन्दर, गुलाबी रङ्ग के, लौंग के आकार में उत्पन्न होते हैं। ये फूल गुच्छों में होते हैं और इसके नीचे निमौली जैसा फल भी होता है।

मान्यता है कि 'बाँदा' एक प्रकार का रोग-सूचक पौधा है। यह स्वंय भी एक रोग शोषका है, अतः जिस पेड़ पर उगता है—उसकी वृद्धि रुक जाती है। एक प्रकार का क्षयकारी प्रभाव उस पेड़ को भीतर ही भीतर जर्जर करने लगता है। यही कारण है कि गाँव के किसान अपने आप जामुन, महुआ के पेड़ों पर उगा बाँदा देखकर, उसे काट देते हैं। बाँदा वाली डालियों (टहनियों) की काट-छाँट से उसका दूषित प्रभाव नष्ट हो जाता है। वैसे, बाँदा किसी भी पेड़ पर हो सकता है, परन्तु यह सबसे अधिक आम के पेड़ पर पाया जाता है। जामुन और महुआ में भी उगता है, किन्तु यही अन्तिम नहीं है, बाँदा किसी पेड़ पर उग सकता है। तन्त्र-शास्त्र में वृक्ष-भेद के अनुसार उस पर उगे बाँदा के प्रयोग
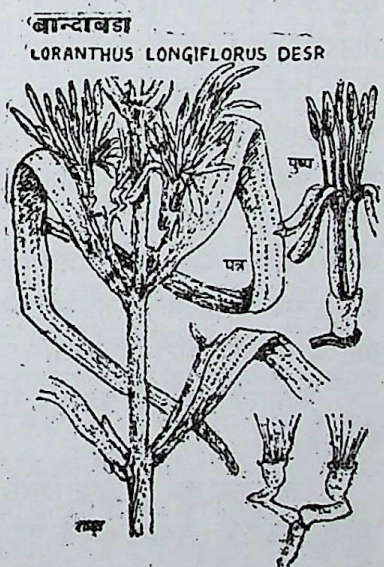
और प्रभावों का विस्तार से वर्णन किया गया है। हर पेड़ के बाँदा का अलग प्रभाव होता है, किन्तु सभी पेड़-पौधों का बाँदा सुलभ नहीं होता। कुछ पेड़ों का बाँदा तो हीरा, नीलम जैसा दुर्लभ होता है। अस्तु, बाँदा एक तुच्छ, उपेक्षित और अनुपयोगी वनस्पति दीखने पर भी तन्त्र-शास्त्र की दृष्टि में अद्‌भुत प्रभावशाली होता है। यहाँ विभिन्न पेड़ों पर पाये जाने वाले बाँदा का प्रयोग और प्रभाव लिखा जा रहा है। समर्थ साधक चाहें तो इससे लाभ उठा सकते हैं।

बाँदा : एक भ्रान्ति भी :

'बाँदा' के तान्त्रिक-प्रयोग लिखने के पूर्व उससे सम्बन्धित एक भ्रान्ति की ओर संकेत करना आवश्यक है, अतः पहले उसी की चर्चा कर रहा हूँ।

ऊपर मैंने एक विशिष्ट वनस्पति को 'बाँदा' बताया है, जो आम, जामुन, महुआ के पेड़ों [illegible]ानी से देखा जा सकता है। इन तीनों पर उपलब्ध 'बाँदा' एक ही तरह का होता है—वही पत्ते, वहीं गाँठदार टहनी, वही लाल-लवङ्गाकृति फूलों का गुच्छा ! और फल भी वही नीम या जामुन के फलों के आरम्भिक रूप में ! इसे किसी से भी पूछें वह इसका नाम 'बाँदा' ही बतायेगा। यदि इस विशिष्ट वनस्पति का नाम 'बाँदा' है, तो मानना पड़ेगा कि जब किसी पेड़ के बाँदा का उल्लेख, वहाँ उस पेड़ पर इसी बाँदा की उत्पत्ति का संकेत रहता है। परन्तु यही बाँदा अन्य वृक्षों पर नहीं देखा जाता, कदाचित ही कहीं होता हो। हाँ, इसकी दो-तीन उपजातियाँ भी हैं, जो लगभग ऐसी ही होती है।

'बाँदा' को मैं अपने अनुभव से एक विशेष वनस्पति मानता हूँ। साथ ही यह भी स्वीकार करता हूँ कि इसकी श्रेणी की दो-एक वनस्पतियाँ और भी है, जो किसी पेड़ पर उगकर, उसमें गाँठ पैदा कर देती हैं। टहनी, पत्ते, फूल, फल और गाँठ—ये बाँदा के अङ्ग है। परन्तु सभी पेड़ों पर सर्वाङ्ग 'बाँदा' नहीं पाया जाता। केवल आम, जामुन और महुआ के पेड़ पर ही सर्वाङ्ग रूप में मिलता है। अन्यत्र या तो मिलेगा ही नहीं, या फिर केवल गाँठ के रूप में या मात्र दो-तीन पत्तियों की छोटी-सी टहनी।

सामान्यतः तन्त्र की प्रचलित पुस्तकों में 'बाँदा' की परिभाषा इस प्रकार प्राप्त होती है :—

'जब एक वृक्ष के ऊपर किसी दूसरी जाति का पेड़ उग आता है, तो उसे 'बाँदा' कहते हैं। यथा—नीम के पेड़ पर पीपल का पौधा उग आना या पीपल पर नीम का अंकुर दीख पड़ना। इसकी उत्पत्ति में यह कारण बताया गया है कि चिड़ियाँ

फल खाती हैं और वे इधर-उधर मल-त्याग करती रहती हैं । कभी-कभी उनके द्वारा लाया गया, खाया गया—-पीपल, पाकर, बरगद का फल अपने बीज उस दूसरे पेड़ (नीम, आम, महुआ, बेल आदि पर कहीं भी) छोड़ देता है । चिड़ियों द्वारा इस प्रकार अनजाने, निरायास ही विभिन्न फलों के बीज स्थानान्तरित होते रहते हैं। यदि कोई बीज किसी पेड़ के तने पर कहीं भी थोड़ी सी भी धूल पा गया हो तो वह वहाँ उगकर पौधे का रूप ले लेता है । ऐसे पौघों को 'बाँदा' कहते हैं। किसी भी जाति के पेड़ पर, किसी भी दूसरी जाति का स्वतः उगा हुआ पौधा 'बाँदा' कहलाता है ।'

अगर यह परिभाषा मान ली जाय तो केवल पाकर, बरगद और पीपल ही 'बाँदा' सिद्ध होते हैं, क्योंकि अधिकतर यही दूसरे पेड़ों पर उगते हैं। नीम के पेड़ पर आसानी से देखे जा सकते हैं । इसी तरह कहीं-कहीं नीम का पौधा भी उग आता है । किसी प्रकार वहाँ निमौली का बीज पहुँच जाने से अनुकूल वातावरण पाकर वह पौधों के रूप में प्रस्फुटित होकर बढ़ने लगता है । हालांकि नीम का पौधा भी बहुत कम कहीं किसी पेड़ पर उगा देखा जायेगा । मुख्यतः पीपल, बरगद और पाकर ही उगते हैं । अपवाद-स्वरूप गूलर का पौधा भी दीख जाता है । परन्तु मेरी मान्यता है कि उन्हें 'बाँदा' कहना ठीक नहीं है । बाँदा वही है जो आम, जामुन के पेड़ पर उगता है—किसी फल का बीज न होकर स्वयं में एक स्वतंत्र मौलिक वनस्पति है । अब वह दुर्लभ है या सुलभ यह बात अलग है, परन्तु जहाँ तक 'बाँदा' वनस्पति का सम्बन्ध है, मेरी धारणा उसी विशेष पौधे के लिए समर्थन देती है । कहीं भी कोई भी, पेड़ उग आये और 'बाँदा' मान लिया जाय, ऐसा मेरी राय में, उचित नहीं होगा ।

अस्तु, यह मैंने नितान्त व्यक्तिगत मत प्रकाशित किया है, इसकी कोई वाध्यता नहीं है, और न ही प्राचीन विद्वानों की मान्यता का खण्डन करता हूँ । फिर भी मेरा अपना मत है कि 'बाँदा' एक विशेष वनस्पति है और वह कहीं भी मिले—अपने मौलिक रूप में ग्राह्य होती है । मैं यह जानता हूँ कि आम-जामुन पर उपलब्ध होने वाला बाँदा—अन्य पेड़ों पर नहीं होता । अतः यदि किसी साधक को बाँदा तन्त्र का प्रयोग करना है, तो वह या तो प्रचलित मान्यता पर आस्था रखते हुए वांछित वृक्ष के परोपजीवी पौधों को 'बाँदा' स्वीकार करके ले आये और उसका प्रयोग करे या फ़िर आम, जामुन वाली विशेष-वनस्पति की खोज करे । वह तो निश्चित रूपेण 'बाँदा' है ही । यदि वह मिल जाय तो फिर कहना ही क्या है । अस्तु, सर्वप्रथम अपने को आश्वस्त करें (किसी विद्वान्, तान्त्रिक, वनस्पति शास्त्री, वैद्य से भी

परामर्श ले लें) कि बाँदा किसे कहते हैं और मेरी साधना के लिए वांछित बाँदा कहाँ मिलेगा ?

अभीष्ट 'बाँदा' प्राप्त करके, उसे विधिवत् प्रयोग किया जाये, तो सचमुच लाभ होता है ।

बाँदा-तन्त्र में मुहूर्त्त का महत्त्व :

अपनी साधना के लिए वांछित 'बाँदा' की खोज करें कि वह कहाँ है । फिर उससे सम्बन्धित शुभ-मुहूर्त्त में उसे, पूर्व निमन्त्रण देकर ले आयें और निर्दिष्ट विधि से प्रयोग करें । मुहूर्त्त-निर्धारण में नक्षत्र का विशेष ध्यान रखा जाता है । जैसा कि आगे लिखा जायेगा, प्रयोग भेद से, वृक्ष भेद से—प्रत्येक बाँदा के लिए अलग-अलग नक्षत्र की उपयोगिता का निर्देश मिलता है । प्राचीन ऋषि-मुनियों ने दशाब्दियों तक अनुसंधान करके, शोध-परीक्षण के पश्चात ये नियम-सिद्धान्त और प्रतिफल घोषित किये हैं । अतः ये असंदिग्ध और अकाट्य है, हाँ, इनकी विधि कहीं-कहीं अस्पष्ट है । अतः साधक भ्रमवश साधना में त्रुटि कर बैठता है । ऐसी भ्रामक स्थिति से त्राण पाने के लिए ही गुरु की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । गुरु ऐसे विषयों का ज्ञाता होगा, तो अवश्य ही समस्या का समाधान बता देगा । इसीलिए गुरु का निर्वाचन भी बहुत छानबीन के बाद करने का परामर्श दिया गया है ।

जाति-भेद से बाँदा का प्रयोग :

आम, जामुन, महुआ, बेल, सिरस, पीपल, बरगद, कटहल, पाकर, इमली आदि विभिन्न प्रकार के पेड़ हमारे देश में पाये जाते हैं । तन्त्राचार्यों ने स्वानुभव के आधार पर घोषित किया गया है कि प्रत्येक पेड़ पर उगा हुआ 'बाँदा' अपना एक विशिष्ट प्रभाव रखता है । उन्होंने, उपलब्ध लगभग सभी वृक्षों के 'बाँदा' का प्रयोग-परीक्षण किया होगा, उसी के आधार पर सबके प्रयोग फल बताये हैं । उदाहरण के लिए, कुछ प्रमुख पेड़ों पर उत्पन्न होने वाले 'बाँदा' की प्रयोग-विधियों और उनकी प्रतिक्रिया (प्रभाव-शीलता) का वर्णन किया जा रहा है :—

बदरी-बाँदाल (बेर का बाँदा) :

'बदरी' संस्कृत का शब्द है । इसका अर्थ होता है बेर । 'बाँदाल' शब्द भी संस्कृत का है, जो 'बाँदा' के लिए प्रयुक्त होता है । इस प्रकार 'बदरी बाँदाल' से बेर के पेड़ पर उत्पन्न बाँदा का आशय समझना चाहिए ।

यह कठिनाई से मिलेगा । खोज करें, कदाचित् मिल ही जाये । बेर के पेड़

पर (उसके किसी शाखा-सन्धि-स्थल पर) यदि किसी भी दूसरी जाति का पौधा उगा है, तो उसे बेर का बाँदा मान लें, और स्वारत-नक्षत्र से उसे ले आयें । लाने के एक दिन पूर्व संन्ध्या को उसे निमन्त्रण दे आयें कि— 'हे दिव्य वनस्पति ! मैं अपनी कार्य-सिद्धि के लिए कल प्रातः आपको लेने आऊँगा । कृपया मेरे साथ चलकर, मेरी सहायता करें ।'

फिर दूसरे दिन, बिना किसी से बोले, निपट अकेले ही, जिस समय स्वाति नक्षत्र चल रहा हो, उस पेड़ के पास जाकर, 'बाँदा' तोड़ लायें । उसे घर लाकर 'देव-प्रतिमा' की भाँति स्नान करायें, चन्दन, पुष्प, धूप दीप से पूजा करें, फिर अपने इष्टदेव का मन्त्र जपें । वैसे, वनस्पतियों के भी मन्त्र होते हैं । बाद में वह 'बाँदा' लाल कपड़े में निकलकर, शरीर पर कहीं (भुजा, कण्ठ, कमर, सिर) भी धारण कर लें । यह 'बाँदा' धारण करके, यदि किसी से विनम्रतापूर्वक (हाथ जोड़कर सभ्यता के साथ) कोई सहायता माँगी जाय तो अवश्य प्राप्त होगी । यह प्रयोग अनुकूलन प्रदान करता है ।

बहुवार का बाँदा :

पता लगायें, यदि कहीं बहुवार के पेड़ पर उगा हुआ बाँदा दीख पड़े तो उसे मघा नक्षत्र वाले दिन पूर्व-वर्णित विधि से घर ले आयें और पूजा करके लाल कपड़े में लपेटकर तिजोरी, कोष, भण्डार, आल्मारी, गल्ला—कहीं भी रख दें तथा नित्य धूप-दीप देते रहें । इसे भुजा या गले में धारण भी किया जा सकता है । बहुवार का बाँदा धन-वृद्धि के लिए प्रसिद्ध है । यह भले ही दुर्लभ है, परन्तु मिल जाये तो प्रयोग करने पर पर्याप्त श्री-समृद्धि देता है । यह बाँदा जहाँ रहेगा—धन की कमी नहीं होने पायेगी ।

शिरीष का बाँदा :

शिरीष को सिरसा, सिरस, शिरस और सेरसा भी कहते हैं। यह एक भारी-भरकम और ऊँचा पूरा वृक्ष होता है । इसकी फलियाँ सेम जैसी, बहुलम्बी, पतली, चपटी होती हैं । यह पेड़ अपनी शोभा के लिए प्रसिद्ध है । भीषण गर्मी में (अप्रैल-मई में) यह फूलता है । इसके फूल बड़े कोमल, सुन्दर और आकर्षक होते हैं । शिरीष-पुष्प को कवियों ने विभिन्न उपमाओं के लिए प्रयुक्त किया है । प्राचीन-काल में मुनि-बालाएं, वर-कन्याएं—श्रृंगार के लिए इसके फूल कानों में पहिनती थीं । राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से भेंट के बाद अपने राजभवन में रहते हुए, एक दिन भाव-विभोर होकर शकुन्तला का चित्र बनाया । जब चित्र पूरा हो गया, तो

उसकी शोभा निरखते समय राजा को ध्यान आया कि शकुन्तला के कान आभूषण रहित हैं, जबकि वह पुष्पाभरण पहिने हुए थीं। तब राजा ने अपने मित्र से कहा—

''मित्र न कर्णार्पिते बन्धनं सखे, शिरीषमागण्ड विलम्ब केशाम्।'

इस प्रकार शिरीष पुष्प को शोभा, सौन्दर्य और कोमलता के लिए पौराणिक-काल से ही मान्यता प्राप्त है। तो, शिरीष का बाँदा पूर्वाभाद्रा नक्षत्र में लाकर, विधिवत् पूजनोपरान्त सिर पर धारण करने से समस्त प्रकार के चिन्ता-भय नष्ट हो जाते हैं।

बान्दा.
LORANTHUS GLOBUSUS ROXB

बरगद का बाँदा :

बरगद पेड़ का बाँदा आद्रा नक्षत्र के दिन लायें, और विधिवत् पूजा करके भुजा पर धारण करें। यह बाँदा—श्रम, संघर्ष, युद्ध आदि में सदैव रक्षक और विजयदायी होता है। शारीरिक-सुरक्षा, शक्ति-बर्द्धक और साहस उत्पन्न करने में यह प्रयोग अद्भुत प्रभाव दिखाता है।

हरसिंगार का बाँदा :

यह दुर्लभ बाँदा है। परन्तु यदि किसी को कहीं दीख जाये तो समझें कि उसके लिए लक्ष्मी का कृपा-कटाक्ष प्राप्त हो चुका है। हस्त नक्षत्र वाले दिन इसे (हरसिंगार का बाँदा) ले आयें और पूजनोपरान्त लाल कपड़े में लपेटकर बक्स में रख दें। यह बाँदा—बक्स, अलमारी, गोलक, कोष, गल्ला, बखरी, घर, भण्डार जहाँ भी रखा जायेगा—धन-समृद्धि का मार्ग खोल देगा। भुजा अथवा कण्ठ में धारण करने पर व्यक्ति को धनागम के अनेक स्त्रोत प्राप्त हो जाते हैं।

थूहर का बाँदा :

यह बाँदा सामर्थ्य बढ़ाकर वाणी को सम्मोहक बनाता है। हाजिर-जबाबी (प्रत्युत्पन्न मतित्त्व), प्रभावशीलता, सम्मोहन, दूरदर्शिता, मेधा, चिन्तन-शक्ति और वाक्‌चातुरी बढ़ाने में यह बाँदा चमत्कारी सिद्ध होता है। ध्यान रहे कि ये सभी प्रयोग विधिवत् किये जाने पर ही लाभकारी होते हैं। कोई भी वनस्पति लानी हो, एक दिन पूर्व संध्या को उसके पास जाकर निमन्त्रण दे आयें, फिर दूसरे दिन उपयुक्त

मुहूर्त्त में स्नानादि से शुद्ध होकर वहाँ जायें और उसे ले आयें। घर लाकर उसे विधिवत् स्नान करायें, चन्दन, धूप, अक्षत, पुष्प, घृत-दीप आदि से पूजा करें, वांछित मन्त्र जपें (यदि मन्त्र का निर्देश नहीं है, तो शिवजी या दुर्गाजी का मन्त्र कम से कम 11 माला जप लें) इस प्रकार विधिवत् पूजा किये जाने पर ही—तान्त्रिक वस्तुएँ प्रभावशाली हो पाती हैं, अन्यथा इनकी शक्ति सुप्त-लुप्त रहती है।

उदुम्बर-बाँदाल :

उदुम्बर अर्थात् गूलर वृक्ष का बाँदा धनदायक होता है। इसे जहाँ भी स्थापित किये जायेगा (रखा जायेगा) वहाँ धन, धान्य सम्पदा की वृद्धि अवश्य होगी।

इसके लिए मान्यता है, कि (शास्त्रीय-निर्देश) है कि 'रोहिणी' नक्षत्र के दिन, गूलर वृक्ष का बाँदा पूर्वोक्त विधि से ले आयें और उसे धूप-दीप से पूजित करके भण्डार में रख दें। बक्स, तिजौरी, गल्ला, आलमारी, रसोईघर, भण्डार, अन्न-भण्डार, गोलक कहीं भी रखें—इसका दिव्य प्रभाव निश्चित-रूपेण धन-धान्यदायक होगा।

कुश का बाँदा :

कुश एक घास है। कभी-कभी इसके पौधे पर, कहीं बीच में पत्ती निकलने वाले स्थान पर एक गोल छोटी-सी कत्थई गहरे-रंग की गाँठ बन जाती है। यह गाँठ रुद्राक्ष की तरह खुरदरी होती है, इसी गाँठ को 'कुश का बाँदा' कहते हैं। मैंने इसे कई बार देखा है। अगर 'कुश' के पौधे सहित यह गाँठ घर में लाकर रखी जाय तो दरिद्रता दूर भाग जाती है। परन्तु यह दुर्लभ पौधा है, कदाचित् ही कहीं मिल पाता है। मैंने एक बार एक बाबा के पास 20 पौधे देखे थे। सब बिल्कुल नये थे—लगभग डेढ़-डेढ़ फुट लम्बे। उन सर्वथा नये कुश पौधों में सुपारी से लेकर झरबेरी के आकार तक की प्रत्येक गोल पौधे में एक गाँठ—प्राकृतिक रूप में उत्पन्न थी। वैसे, तान्त्रिक वस्तुएं बेचने वालों के पास खोजने से यह मिल जाता है, परन्तु बहुधा, पुराना, टूटा-हुआ, छिन्न-भिन्न, विकृत और कुरूप आभाहीन होता है।

अगर कहीं अच्छा, साफ, सुडौल, अभङ्ग कुश का बाँदा प्राप्त हो सके तो उसे 'भरणी' नक्षत्र के दिन लाकर विधिवत् पूजन करें, फिर भण्डार या बक्स में रख दें। यह बहुत ही प्रभावी वस्तु है। मेरी माताजी ने इसका प्रयोग किया था। बाद में मेरी पत्नी ने भी इसकी विस्मयकारी दिव्यता का अनुभव किया। प्रतिबन्ध यही है कि बाँदा अपने में पूर्ण हो, छिन्न-भिन्न नहीं। मुहूर्त्त (भरणी नक्षत्र) का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

आम का बाँदा :

किसी रविपुष्य योग के दिन विधिवत् आम का पौधा लायें। उसे घर लाकर, धूप-दीप से पूजा करें, फिर सुरक्षित रख दें। यह बाँदा भुजा पर बाँधने से कार्य में सफलता मिलती है। इस प्रयोग को 'विजयदायक' कहा गया है।

अनार का बाँदा : (1)

अनार के पेड़ का बाँदा दुर्लभ वस्तु है। फिर भी यदि किसी को प्राप्त हो जाये, तो वह इसका लाभ उठा सकता है। नियम यह है कि जिस दिन ज्येष्ठा नक्षत्र हो, अनार का बाँदा ले आयें और उसे विधिवत् पूजा करके घर के मुख्य द्वार पर (किसी आले पर) सुरक्षित रूप में रख दें। इस प्रयोग के अभाव से घर में आया हुआ दुर्भाग्य, दुष्ट ग्रहों का प्रभाव, नजर-टोना, अभिशाप सब समाप्त हो जाता है। जिस घर में अनार का बाँदा रहता है, वहाँ के सदस्य बच्चे सब नीरोग रहते हैं। नजर, टोटका, अभिचार आदि का सारा दुष्प्रभाव शान्त होकर, वहाँ सौभाग्य की वृद्धि होती है।

अनार का बाँदा (2)

ऊपर अनार के बाँदा का एक प्रयोग लिखा जा चुका है, जो भौतिक और वायव्य व्याधियों के निवारण में सहायक होता है। यहाँ नक्षत्र भेद से अनार का बाँदा विधिवत् ले आयें और इसे पूजनोपरान्त घर में रखें अथवा किसी रूप में शरीर पर धारण करें। इस (पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में प्राप्त और पूजित अनार का बाँदा) तन्त्र का प्रयोग व्यक्ति की आर्थिक-स्थिति में सुखद-परिवर्त्तन कर देता है। धन-सम्पत्ति और वैभव प्राप्त करने के इच्छुक जन इस बाँदा का प्रयोग करके लाभ उठा सकते हैं।

बड़ का बाँदा :

यह परम पोषक होता है। अश्विनी नक्षत्र के दिन इसे विधिवत् ले आयें और धूप-दीप से पूजा करके रख दें। यह औषधीय घटक के रूप में विख्यात है। जिस दिन लायें, उसी दिन से पूजनोपरान्त इसे पत्थर पर डालकर घिसें। चन्दन जैसा लेप बन जाने पर, वह लेप दूध में मिला लें और पी जायें तो शारीरिक-शक्ति बढ़ जाती है। यह प्रयोग बुढ़ापे को दूर भगाकर शरीर को युवा (सबल) बना देता है।

कपित्थ बाँदल :

कपित्थ वृक्ष पर उगा हुआ (कैथे के पेड़ पर उत्पन्न) बाँदा शस्त्र-स्तम्भक होता है। इसे 'कृतिका' नक्षत्र में ले आयें और पूजा करके रख दें। जिसने यह बाँदा धारण कर रखा हो, वह शत्रुओं के मध्य घिर जाने पर भी उनके प्रहारों से आहत नहीं होता। वस्तुतः उस व्यक्ति पर हथियार कारगर नहीं होते।

सम्हालू का बाँदा :

वैसे, 'सम्हालू' चावलों की एक जाति है, जैसे बादशाह-पसन्द, रामभोग, हंसराज, गुटमुर्री, बासमती आदि। परन्तु यहाँ हमारा वर्ण्य-विषय 'चावल' न होकर 'सम्हालू' नाम की एक स्वतन्त्र वनस्पति है। यह पौधा सड़कों के किनारे कहीं-कहीं स्वत: उगता है। सरपत, बलुही जमीन, झाड़-झंखाड़ और छोटे-मोटे नालों की तलहटी में यह अपने आप उगता है। अरहर की भाँति इसका पेड़ काफी हरा-भरा दीखता है। इसी पुस्तक में अन्यत्र सम्हालू का वर्णन 'निर्गुण्डी' शीर्षक से किया गया है। उस निर्गुण्डी अथवा सम्हालू को पौधे पर भी बाँदा उग आता है। यदि आपको निर्गुण्डी अर्थात् सम्हालू का बाँदा दीख पड़े तो उसे विधिपूर्वक ले आयें। पूर्व-निमन्त्रण और शुभ-मुहूर्त्त का प्रतिबन्ध इसमें भी रहता है।

जब भी आपको निर्गुण्डी पौधे पर बाँदा दीख पड़े तो उसकी रक्षा करें। जिस दिन हस्त नक्षत्र हो, उसे घर ले आयें और विधिवत् पूजा करके रख लें। यह बाँदा धनदायक होता है। इसे ताबीज या किसी भी रूप में धारण करने से व्यक्ति को धनाभाव का क्लेश नहीं उठाना पड़ता है। आर्थिक-समृद्धि के लिए यह परम लाभकारी प्रयोग है। परन्तु निर्गुण्डी का बाँदा सहज सुलभ नहीं होता, बिरले भाग्यवान् को ही प्राप्त होता है।

बिदारीकन्द का बाँदा :

जङ्गलों में एक लता होती है—बिदारीकन्द ! इसके पत्ता पान की भाँति होते हैं। इसकी जड़ शकरकन्द की भाँति गाँठों वाली होती है। शकरकन्द, सफेद (लाल भी) कोमल और मीठी होती है, जबकि बिदारीकन्द (और बाराही कन्द भी) की जड़ खुरदरी, काली कुरूप और स्वाद में कटु होती है। बिदारीकन्द का प्रयोग शक्ति-बर्द्धक औषधियों में किया जाता है। अब जङ्गल समाप्त हो चले हैं, किन्तु यदि कहीं उसके पौधे मिलें और कोई व्यक्ति इसकी जड़ खोद लाये तो उसका चूर्ण सेवन करके शारीरिक-शक्ति बढ़ा सकता है। किन्तु यहाँ उसके औषधीय-प्रयोग का वर्णन न करके केवल उसके बाँदा की विशेषता पर प्रकाश डालना है।

हाँलाकि बिदारीकन्द का बाँदा मिलना बहुत ही कठिन (असम्भव जैसा) है, क्योंकि इसकी लता पर कोई अन्य परोपजीवी पौधा उगने की स्थिति-सम्भावना बहुत कम रहती है। फिर भी यदि कहीं मिल जावें तो उसे पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में, विधिवत् (तान्त्रिक विधि का उल्लेख पूर्व में कई बार किया जा चुका है) ले आयें और पूजा करके घर में रख दें।

धन-वृद्धि के लिए तन्त्र-शास्त्र में इस प्रयोग को बहुत प्रभावशाली माना गया है।

कपास का बाँदा :

इस बाँदा की प्राप्ति भी असम्भव प्राय: है, क्योंकि कपास के पौधे पर कोई परोपजीवी पौधा उगने की सम्भावना बहुत ही कम रहती है। इस बाँदा का जो भी प्रभाव तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णित है, वह भी संशयात्मक प्रतीत होता है। संभव है इसकी विधि में कुछ गोपनीयता बरती गयी हो क्योंकि जैसा प्रयोग लिखा मिलता है, उसके तथाकथित परिणाम को संदिग्ध ही कहा जायेगा। अस्तु; प्रसङ्गपूर्ति के लिए वह विवरण भी प्रस्तुत है—'भरणी' नक्षत्र के दिन कपास का बाँदा तान्त्रिक विधि से लायें और उसकी पूजा करें। इसे धारण करने पर व्यक्ति उपस्थिति रहते हुए भी सामने वाली दृष्टि से ओझल हो जाता है। अर्थात् यह बाँदा 'अदृश्यीकरण' में सहायक होता है।

रोहित का बाँदा :

ठीक कपास के बाँदा जैसा विवरण, रोहित वृक्ष के बाँदा का भी प्राप्त होता है। तन्त्राचार में कहा गया है कि यदि कोई साधक रोहित वृक्ष का बाँदा 'अनुराधा' नक्षत्र में विधिवत् लाकर पूजनोपरान्त धारण करे, तो वह इच्छानुसार अदृश्य हो जाता है। मेरा अपना विचार है कि इन दोनों प्रयोंगों (कपास और रोहित का बाँदा) में या तो कहीं कोई प्रयोग-विधि लुप्त-गुप्त है, इसमें कोई प्रतीकात्मक संकेत है। फलवर्णन में अतिशयोक्ति की सम्भावना भी मानी जा सकती है। वैसे, इस प्रयोग में कुछ न कुछ सत्यांश अवश्य है, कोरी कल्पना अथवा भ्रमजाल कहकर इसे टाला नहीं जा सकता। अदृश्यीकरण प्रयोग के और भी कई उल्लेख तन्त्र-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, जिनमें कोई विशेष गुटिका मुँह में धारण करते ही व्यक्ति के अदृश्य हो जाना गया है। इस सन्दर्भ में एक तथ्य और स्मरणीय है—वस्तुओं पर देश, काल, स्थान, जलवायु, प्रयोक्ता, भावना, समकालीन, वातावरण प्रयोज्य घटकों की शुद्धता, त्रुटि, प्रयोग-विधि और मुहूर्तादि का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

जो प्रयोग असफल हो जाते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में, जाने-अनजाने ऐसा ही कोई विघ्न उत्पन्न हो जाता है, जो साधक के सारे श्रम को व्यर्थ और वर्णित प्रयोग को विवादग्रस्त, अविश्वनीय बना देता है। मेरा मत है ऐसी संदिग्ध और असंभव प्राय: साधना के लिए श्रम न करके—कोई सात्त्विक प्रयोग किया जाय, जो साधक को सुख-शान्ति दे सकें। अदृश्य हो जाने की शक्ति प्राप्त होते ही आज (भौतिक-युग) के स्वार्थान्ध मानव निश्चय ही उसके दुरुपयोंगों की ओर प्रवृत्त होंगे। इस क्षमता का उपयोग आज के आपराधिक युग में किसी दुष्कामना की पूर्ति के लिए

ही होगा। संभव है ऐसी ही किसी स्थिति की कल्पना करके उसका पूर्वाभास पाकर मनीषियों ने इस तरह के प्रयोंगों को जान-बूझकर अस्पष्ट बनाये रखा हो।

शाखौट बाँदा का प्रयोग [1]'

ऊपर 'कपास' और 'रोहित' वृक्षों से प्राप्त होने वाले बाँदा की साधना में बताया गया है कि प्राचीन तन्त्राचार्यों ने इन प्रयोगों को 'अदृश्यीकरण' सिद्धि-दाता घोषित किया है। वैसा ही एक प्रयोग और भी है— 'शाखौट वृक्ष का बाँदा' मृगसिरा नक्षत्र के दिन तान्त्रिक विधि से लाकर, शोधन-पूजन द्वारा सिद्ध कर लें। तदुपरान्त पान के पत्ते में लपेटकर, गुटिका की भाँति सुख में धारण करें। कहा गया है कि इस प्रयोग से साधक को अदृश्य हो जाने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। अर्थात् पूर्व-वर्णित प्रयोगों की भाँति यह भी अदृश्यीकरण प्रयोग है।

शाखौट बाँदा का प्रयोग [2]

शाखौट का बाँदा जहाँ अदृश्यीकरण के लिए प्रयोज्य बताया गया है, वहीं यह पृथ्वीतल में छिपे (भूगर्भ स्थिति) धन (गड़े हुए खज़ाने) का पता लगा भी देता है। इस प्रयोग के लिए उक्त बाँदा 'अनुराधा' नक्षत्र के दिन लाया जाता है। सबसे पहले अनुराधा नक्षत्र (योग) में इसे (शाखौट) वृक्ष पर से नियमानुसार निमंत्रित करने के पश्चात घर ले आयें। तदुपरान्त उसकी पूजा करें। बाद में उसी दिन या फिर रविपुष्य योग हो, 'गोरोचन' नामक पदार्थ के साथ इसे (वही बाँदा) साफ पत्थर पर घिसकर आँजन जैसा बना लें। स्नान पूजा के बाद ही यह आँजन तैयार करें, फिर देवी-देवताओं का स्मरण करते हुए, आँखों में आँज लें। इस अंजन से युक्त आँखों वाला साधक यदि ऐसे स्थान पर खोज करे, जहाँ भूगर्भ में धन छिपा होनेकी सम्भावना हो, तो यदि सचमुच वहाँ धन है, तो उस व्यक्ति को अवश्य दृष्टिगोचर होगा। गुप्त धन का पता लगाने के लिए तन्त्र-ग्रन्थों में यह तथा ऐसे ही और भी कई प्रयोग वर्णित हैं। परन्तु मेरी समझ में यह प्रयोग सर्वसाधारण के लिए सुलभ-सुकर नहीं है। 'शाखौट' का पेड़ मुश्किल से मिलेगा, फिर उस पर बाँदा की उपलब्धि भी कल्पनातीत मालूम होती है। अतः ऐसे दुःसाध्य प्रयोगों से सामान्य व्यक्ति को लाभ नहीं हो सकता।

वच का बाँदा :

'वच' भी एक वनस्पति है। यह दो प्रकार की होती है —'कडुवी' और मीठी ! मीठी वच शक्तिशाली, मेधा-बर्द्धक, स्मरण-शक्ति को जगाने वाली और कण्ठ-शोधक होती है। जबकि कडुवी वच (इसे घोड़वच भी कहते हैं) विषाक्त

होती है । इसे पीसकर लेप करने से बालों के जुँएँ मर जाते हैं । इसका लेप अधिक मात्रा में खा लेने पर मृत्यु हो सकती है । तान्त्रिक तथा औषधीय प्रयोंगो में मीठी वच का प्रयोग होता है । वच के विषय में नीति-ग्रन्थों में भी बहुत प्रशंसात्मक वाक्य प्राप्त होते हैं । त्वरित प्रभावशीलता वाली वस्तुओं का वर्णन करते हुए कहा गया है :—

"सद्यः प्रज्ञा हरा तुण्डी, सद्यः प्रज्ञा करी वचाः ।
सद्यः शक्ति हरा नारीं, सद्यः शक्तिकरं पयः ॥"

इस श्लोक में 'सद्यः प्रज्ञाकारी वचाः' पर ध्यान दें । आशय यह है कि वच का सेवन करने से तत्काल प्रज्ञा (बुद्धि, धारणा-शक्ति) बढ़ जाती है । ब्राह्मी बूँटी को भी इस गुण से युक्त माना गया है । यह प्रभावशीलता ठीक वैसी ही है, जैसी विजया (भाँग) में होती है । सेवन के थोड़ी देर बाद ही मस्तिष्क का स्नायु-तन्त्र प्रभावित हो जाता है । ऐसा ही कुछ प्रभाव 'वच' में है, जो सेवनोपरान्त तत्काल मस्तिष्क को सक्रिय, सजग (नशे में नहीं सहज, चेतन, सशक्त) बना देता है ।

स्वर-साधना में भी 'वच' को परम लाभकारी कहा गया है । मेरे क्षेत्र के प्रसिद्ध वैद्य और सङ्गीतज्ञ—'अम्बिकाप्रसाद जी' ने मुझे एक नुस्खा (मेरे सङ्गीत-प्रेम को लक्ष्य करके) बताया था, उसमें भी 'वच' का वर्णन था :—

"अद्रक, भद्रक, पीतरसं,
वच, वाकुचि, ब्राह्मी, सद्य घृतम् ।
यदि इच्छित कोकिलनादि स्वरम्,
पिव माघ चतुर्दश कृष्ण दिनम् ॥"

इस प्रकार 'वच' बुद्धि-बर्द्धक और स्वर-शोधक मानी गयी हैं । 'वच' के पौधे पर भी 'बाँदा' का उगना सम्भव है, हालांकि यह भी दुर्लभ वस्तु है । अगर कहीं मिल जाये तो उसे ले आयें । 'वच' का बाँदा लानें का मुहूर्त्त नक्षत्राधारित न होकर, 'ग्रहणाधारित' है । अर्थात् किसी भी ग्रहण के दिन (उत्तम होगा कि ग्रहणकाल में ही वह चाहे सूर्यग्रहण हो अथवा चन्द्रग्रहण) उसे लाकर विधिवत् पूजा करें और सुरक्षित रख दें । बाद में इसे पीसकर चूर्ण बनायें और प्रातः सूर्योदय के पूर्व 3 माशा की मात्रा में 6 माशा शुद्ध गौ-घृत मिलाकर सेवन करें, ऊपर से ताजा (धारोष्ण) गो-दुग्ध पियें । यह प्रयोग लगातार सात दिनों तक करें (वैसे मैं तो मानता हूँ कि 21 दिनों तक करना चाहिए ।) यह प्रयोग व्यक्ति की वाक्शक्ति

बढ़ा देता है । जो लोग स्वरभङ्ग, उच्चारण-दोष, हकलाहट, जिह्वा-कष्ट अथवा वाणी सम्बन्धी किसी भी व्याधि से ग्रस्त हों, वे इस प्रयोग से सुवक्ता, स्पष्ट, मधुर कण्ठ-स्वर वाले और वाग्मी हो जाते हैं ।

बिल्व बाँदा :

बेल का बाँदा भी अदृश्यीकरण साधना के लिए उपयोगी बताया गया है । इसको 'अश्विनी' नक्षत्र के दिन विधिवत लाकर पूजनोपरान्त भुजा पर धारण करना चाहिए । प्रयास किया जाय तो कदाचित् बेल का कोई बाँदा भी मिल जाय, परन्तु मुझे इस विवरण में भी कहीं कोई अस्पष्टता, गोपनीयता, प्रतीकात्मक और कूट-दृष्टान्त की झलक मिल रही है । अन्यथा तब तक कोई न कोई साधक इस सिद्धि का स्वामी बनकर प्रकाश में आ चुका होता । बेल के पेड़ अपने देश में बहुत हैं, और खोजने पर कहीं न कहीं बेल का बाँदा भी मिल सकता है । किन्तु आज तक कहीं किसी के अदृश्य होने का समाचार नहीं मिला । वस्तुतः इन प्रयोंगों में कहीं-कहीं जान-बूझकर महर्षियों ने ऐसे रहस्य निहित कर दिये हैं कि कोई इनका दुरुपयोग न कर सकें । वैसे, प्रत्येक क्षेत्र अपने में परीक्षित और अनुभूत होने पर ही कोई प्रसंग ग्रन्थों में वर्णन का विषय बन पाया है ।

अशोक का बाँदा :

पूर्ववर्णित-तान्त्रिक-पद्धति से, 'उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के दिन अशोक वृक्ष का बाँदा ले आयें । इसकी पूजा करें और प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय के पूर्व स्नान-पूजा से निवृत्त होकर, उसे पीसकर पियें । यह प्रयोग साधक को अदृश्य होने की क्षमता प्रदान करता है ।

नीम का बाँदा :

नीम के पेड़ पर यदि बाँदा दीख पड़े तो उसे 'ज्येष्ठा' नक्षत्र के दिन ले आयें और घर के बाहर कहीं साफ जगह पर धूप-दीप से पूजा कर लें । (किसी-किसी ग्रन्थ में पूजा का प्रतिबन्ध नहीं है) । तदुपरान्त उसे विरोधी के शरीर पर डाल दें (स्पर्श करा दें) । यह प्रयोग बहुत ही दुःखद, दुर्भाग्यकारी और पीड़क होता है । जिस व्यक्ति पर यह बाँदा डाला जायेगा । उसको तत्काल ही दुर्भाग्य-ग्रस्त कर लेगा । फिर उसकी कोई श्री-समृद्धि साथ नहीं होगी और वह लगातार दुर्भाग्यजनित -क्लेश सहने को विवश हो जायेगा ।

यही बाँदा (नीम का बाँदा) यदि 'आद्रा' नक्षत्र में लायें और विरोधी (शत्रु) के शयन-कक्ष में अथवा वह जहाँ भी सोता है, फर्श के नीचे अथवा उसके बिस्तर पर छिपा दें (गाढ़ दें)। यह प्रयोग भी बहुत पीड़क होता है। इसकी प्रतिक्रिया में शत्रु और विरोधी (जिसके लिए प्रयोग किया गया हो) अनेक प्रकार की आपदाओं से ग्रस्त होकर अशक्त हो जाता है। कभी-कभी यह प्रयोग उसे सदा के लिए समाप्त कर देता है।

आँवल वृक्ष का बाँदा :

सभी पेड़ों पर बाँदा नहीं उगता, अधिकांश पेड़ों पर तो इसकी उपस्थिति दुर्लभ अथवा कल्पना मात्र ही प्रतीत होती है। परन्तु संसार में असम्भव कुछ नहीं है। फिर जब ग्रन्थों में उल्लेख है तो तत्कालीन महर्षियों ने उसे कहीं न कहीं अवश्य देखा होगा। अस्तित्त्व रहित वस्तु का विवरण वे क्यों लिखते ? यह भी हो सकता है कि पहले वे सभी वनस्पतियाँ सुलभ थीं, अब वानस्पतिक-विनाश (प्रदूषण) ने इन्हें लुप्त कर दिया। अस्तु प्राचीन ऋषि-मुनि और यन्त्राचार्य जो भी लिख गये हैं—वह कहीं न कहीं साधार अवश्य है ! भले ही, हम उसकी समुचित व्याख्या न कर पायें, अथवा उसके लाक्षणिक संकेतों को न समझ पायें, परन्तु यह तो निश्चित है ही कि प्राचीन-ग्रन्थों में (प्रामाणिक प्रतियों में) जो कुछ लिखा गया है, वह केवल कल्पना अथवा मिथ्या पाखण्ड न होकर, ग्रन्थ कर्त्ताओं के अध्ययन, अनुभव और दृष्टि शक्ति पर आधारित है।

आँवले का बाँदा भी एक बहुत ही दुर्ल वस्तु है। परन्तु यदि कहीं दीख जाये तो उसे 'आश्लेषा' नक्षत्र में ले आयें और पूजनोपरान्त दाहिनी भुजा पर (ताबीज कपड़े द्वारा) धारण कर लें। यह प्रयोग पूर्णरूपेण सुरक्षाकारी होता है। इसे धारण करने वाले व्यक्ति को राजकोप, चोर, डाकू और हिंसक-पशु आदि का भय नहीं रह जाता। ऐसी सभी स्थितियों में वह पूर्णतया सुरक्षित रहता है।

मुलहठी का बाँदा :

मुरैठी कोई पौधा नहीं बल्कि 'जड़' है। प्रारम्भ में घुँघुची (रत्ती अथवा गुञ्जा) का वर्णन किया गया है। मुरैठी (मुलहठी) उसी धुँघुची लता की जड़ है। यह चूसने में मीठी होती है और श्वांस, कास, स्वरभङ्ग, कफ-विकार आदि में औषधि रूप में प्रयुक्त होती है। इसी रस से यूनानी दवा (रब्बे सूस) बनती है, जो खाँसी के लिए परम उपयोगी औषधि प्रमाणित होती है। तो उसे मुलहठी अर्थात्

घुँघुची-पौधे (लता) की छानबीन करें। यदि उस पर बाँदा मिल जाये तो उसे 'रवि-पुष्य' योग में ले आयें और पूजन शोधन के बाद सुरक्षित रख लें। यह वाक्-स्तम्भन करता है। जब कभी अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक हो, इसे, सभी, गोष्ठी, पंचायत, वार्त्तारत जन-समूह के बीच फेंक दें। इसका प्रभाव तत्काल सभी को हतप्रभ, आवाक् और मूढ़ जैसा बना देगा। इस प्रकार वहाँ कोई निर्णय, योजना, षड्यन्त्र आदि सम्भव नहीं रहेगा।

पीपल का बाँदा :

पीपल, बरगद, पाकर, गूलर (अंजीर भी किसी सीमा तक) आदि वृक्ष लगभग सजातीय माने गये हैं। ये वृक्ष प्रायः देखे जाते हैं। पीपल और बरगद के पेड़ों की पूजा भी होती है। इनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत, सिद्धान्त, विश्वास, प्रयोग और विवेचन प्राप्त होते हैं। 'पीपल' वृक्ष को तान्त्रिक-प्रयोगों में सर्वाधिक मान्यता दी गयी है। इस पेड़ पर प्राप्त होने वाला बाँदा भी चमत्कारी माना जाता है। प्रसिद्ध है कि यदि कोई महिला पीपल वृक्ष का बाँदा 'अश्विनी' नक्षत्र के दिन लाकर पूजनोपरान्त गाय के दूध के साथ (पीसकर) पिये तो वह गर्भ धारण में समर्थ (सफल) हो जाती है। कोई सधवा स्त्री यदि नीरोग है, (पति भी नीरोग है) और केवल दैवी विधान के कारण संतान-सुख से वंचित है, तो यह प्रयोग (पीपल का बाँदा) उसे गर्भ धारण का सौभाग्य प्रदान करता है। मान्यता तो यहाँ तक है कि इस प्रयोग के प्रभाव से बन्ध्या स्त्री भी गर्भवती हो सकती है। इस प्रकार उसे मार्तृत्त्व का सुख-सौभाग्य अवश्य प्राप्त होता है।

बाँदा का तिलक :

किसी 'रवि-पुष्य' योग के दिन शाखौट वृक्ष का बाँदा लायें और गोखरू भी प्राप्त करें। यह तीनों वस्तुएं भार में समान मात्रा में लें और इनके संयुक्त भार का एक चौथाई भाग सेंधा नमक लें। इन चारों चीजों को पहले धूप-दीप से शुद्ध करें फिर पत्थर पर बकरी के ताजे दूध के साथ घिसें। इन्हें पत्थर पर घिसने से चन्दन जैसा लेप तैयार होगा। इस लेप को माथे पर चन्दन की भाँति लगायें। फिर नित्य पूजनोपरान्त यही लेप तैयार करके लगाते रहें। तन्त्र-शास्त्र में इस लेप का प्रभाव अद्भुत बताया गया है। मान्यता है कि इस लेप को माथे पर तिलक की भाँति धारण करने वाला साधक, आकाश, वायुमण्डल तथा पृथ्वी की अदृश्य वस्तुएं एवं घटनाएं देख सकता है।

3 श्वेतार्क

सामान्य परिचय :

भारतीय-वनस्पतियों में धतूरा, मदार, थूहर, नागफनी और करील को विषाक्त माना जाता है। इनके पत्ते ऊँट-बकरी भी नहीं चरते। यह भी एक विचित्रता है कि बिना सेवा सुश्रुषा के, ऊसर-बंजर जैसी जगहों में भी ये पौधे अपनी जीवन्तता के साथ हरे-भरे खड़े रहते हैं और समय पर अपने फल-फूल आदि का प्रदर्शन भी करते हैं।

मदार को 'आक' अथवा 'अर्क' भी कहते हैं। इसकी शाखायें पतली लम्बी होती है। उत्पत्ति स्थान से यह अनेक शाखायें लेकर बढ़ता है। इसमें कोई एक तना न होकर, सभी शाखायें स्वतन्त्र रूप में तने की तरह लम्बी-पतली होकर बढ़ती जाती हैं। यों पुराना हो जाने पर यह पौधा कभी-कभी 10-12 मीटर ऊँचा हो जाता है और तब मुख्य तने की मोटाई 18-20 तंच तक हो जाती है। परन्तु ऐसे पौधे अपवाद-स्वरूप ही मिलते हैं, अन्यथा यह पौधा कब्रिस्तानों, खण्डहरों, रेलवे-लाइन के किनारे वाले प्राकृतिक ढूहों पर अपने आप उगकर हरियाली की सृष्टि करता रहता है। इसके पत्ते हरे रंग के होते हैं, जिस पर सफेद धूल जैसी भूरी पर्त्त पड़ी रहती है। आकार में ये पत्ते बरगद के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं। परन्तु बरगद का पत्ता लाली या कालिमायुक्त हरा होता है, जबकि मदार का पत्ता शुद्ध हरे रङ्ग का होता है।

मदार में फूलों के गुच्छे निकलते हैं। इसके फूल खिलने पर बाहर की ओर सफेद और बीतर की ओर बैंगनी रङ्ग की अद्‌भुत छटा विखेरते हैं। फूल सूख जाने पर उनके स्थान पर फल तैयार होते हैं। पकने पर यह फल सूखकर चटक जाते हैं, और तब उनके भीतर भरे हुए बीज जो सफेद मुलायम रेशों से अवतरित होते हैं, हवा में उड़कर इधर-उधर बिखरने लगते हैं। मदार के फल से प्राप्त रेशों को 'रुई' कहा जाता है। मदार की यह रुई बहुत कोमल, चिकनी और चमकीली होती

है । लोग इसे तकियों में भराते हैं । सामान्य रुई (कपास) की अपेक्षा मदार की रुई बहुत ही कोमल और स्पर्श-सुख देने वाली होती है । परन्तु इसकी तासीर गर्म होती है । अतः लोग जाड़े में भले ही, इसका तकिया इस्तेमाल कर लें, गर्मी में उसे नहीं छूते । (इसी प्रकार सेमल की रुई से भी तकिया-गद्दा बनाये जाते हैं) ।

मदार के पौधे में कहीं भी एक खरोंच लगा दें—तत्काल दूध निकल पड़ेगा । यह पौधा सर्वाङ्ग में दूध से भरा होता है । पत्ते तो दूध का उद्गम होते ही हैं । कोई भी पत्ता तोड़िये, तुरन्त उस जगह से दूध टपकने लगेगा । यह दूध विषाक्त होता है और प्रयोग भेद से कई दवाओं के निर्माण में प्रमुख घटक बनता है । आँख में पड़ जाने पर यह आँख की पुतली को भारी हानि पहुँचाता है, अतः इसे तोड़ते समय लोग दूध की छीटों से बहुत सावधान रहते हैं ।

शिवजी की पूजा में मदार के पुष्प चढ़ाये जाते हैं । यह शिवजी की अनुपम महानता है कि वे देवाधिदेव होकर भी स्वयं के प्रति सर्वथा उदासीन हैं । भक्तों को विश्व का वैभव देने वाले शिवजी का अपना रहन-सहन, निवास और आहार-विहार कितना त्यागमय है यह उनके वस्त्राभूषणों और खाद्य-पदार्थों से स्पष्ट हो जाता है । कोई देवता तस्मै (खीर) प्रेमी है, कोई छप्पन भोग का आहारी है, कोई नाना प्रकार के फलों मिष्ठानों से तृप्त होता है, परन्तु शिवजी ने उसे आहार बनाया है, जिसे पशु भी नहीं खाते—धतूरा, मदार, भाँग और अहिफेन ! ऐसे निस्पृहः त्यागी, उदार और भक्तवत्सल देवता को इसीलिए विश्व में सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है । आज भी रूस, यूरोप और सुदूर अमेरिका के देशों के उत्खनन के दौरान कहीं-कहीं मूर्त्ति सहित शिव मन्दिर प्राप्त होते हैं । अस्तु मदार का पुष्प शिवजी को अर्पित किया जाता है और उनके पुत्र गणेशजी की पूजा में भी यह बड़ी श्रद्धा के साथ प्रयोग कियां जाता है ।

बैंगनी रङ्ग के फूल वाला मदार बहुतायत से मिलता है । इसे काला मदार, कृष्ण मदार, कृष्णार्क, श्यामार्क आदि नामों से भी जाना जाता है । अन्य पौधे बरसात

में विशेष रूप से पल्लवित होते हैं, परन्तु जवासा नामक घास और मदार इसके अपवाद होते हैं। ये दोनों प्रचण्ड गर्मी और भयंकर शीत में हरे-भरे होते हैं, परन्तु वर्षा ऋतु में ये मुरझा कर क्षीणप्राय: हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस में वर्षा ऋतु वर्णन के अन्तर्गत लिखा है :—

अर्क जावस पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ।

अस्तु हमारा यहाँ विवेच्य, विषय श्यामार्क नहीं, श्वेतार्क है। यह भी वही मदार है, परन्तु इसके फूल बैंगनी रङ्ग के न होकर, बिल्कुल सफेद होते हैं। इसके पत्ते अपेक्षाकृत लम्बे और गहरे हरे रङ्ग के न होकर कुछ हल्के रङ्ग के, थोड़ी सफेदी की झलक दिखाते हुए होते हैं। यह पौधा अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा होता है, और फूल भी इसमें पर्याप्त मात्रा में गुच्छों में लगते हैं। परन्तु फलों की संख्या इसमें कम होती है। इसकी शाखायें लम्बी, पतली और सीधी होती है। अपने पूर्णतया श्वेत पुष्पों के कारण ही यह श्वेतार्क अथवा सफेद मदार कहा जाता है।

तान्त्रिक-दृष्टि से श्वेतार्क का महत्त्व अधिक है। इसमें गणेशजी का आवास तथा उनका प्रिय प्रतिरूप माना जाता है। इसके विभिन्न गुणों और चमत्कारी प्रभाव ने सुदूर अतीत में ही, प्राचीन ऋषि मुनियों को चमत्कृत कर दिया था। यही कारण है कि विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों में इसका विस्तृत उल्लेख प्रापत होता है। परन्तु इतना प्रभावशाली पूज्य और चमत्कारी होने पर भी यह पौधा बहुत कम दीख पड़ता है। कृष्ण मदार के पौधे जहाँ शत-प्रतिशत होते हैं, वहाँ इसके पौधे 1-2 प्रतिशत से भी कम पाये जाते हैं।

मध्यप्रदेश में यात्रा में मैंने इसे कई जगह देखा। भोपाल और इन्दौर में कहीं पौधे दीख पड़े। ऋषिकेश में भी कई जगह देखने में आया। एक बार ऋषिकेश गया था। साथ में मेरे अनन्य स्नेही 'कन्हैया लाल गोयल' भी थे। तान्त्रिक-वस्तुओं की चर्चा में मैंने उनसे 'श्वेतार्क' का जिक्र किया और उसकी दुर्लभता तथा गुण बताये। देवयोग से उसी समय एक कोठी के कम्पाउण्ड की ओर मेरी दृष्टि गयी। वहाँ एक बहुत बड़ा मोटा, पुराना और लगभग 25 फीट ऊँचा श्वेतार्क का वृक्ष दीख पड़ा, घने पत्तों और फूलों के गुच्छों से लदा वह अद्‌भुत छटा बिखेर रहा था। लगता था, साक्षात पारिजात वृक्ष है। मैंने और भी कई बड़े वृक्ष देखे हैं, परन्तु इतना ऊँचा और सघन, पुष्प-सम्पन्न वह अपनी तरह का पहला वृक्ष था। गोयल जी, उसकी सघनता पर प्रसन्न और चकित थे।

गणेशजी की पूजा में 'श्वेतार्क' का विशेष महत्त्व है । वैसे, शिवजी पर भी इसके पुष्प अर्पित किये जाते हैं । परन्तु जिस आधार पर इसे तान्त्रिक-जगत् में महत्त्व प्राप्त है, वह है—इसकी अद्भुत जड़ ! इसे 'श्वेतार्क-मूल' (सफेद मदार की जड़) कहते हैं ।

मान्यता है कि श्वेतार्क-मूल में गणेशजी का वास होता है और यदि वह तान्त्रिक-विधि से वह मूल (जड़) प्राप्त करके घर में स्थापित की जाये तथा उसका दैनिक पूजन हो तो वह गणेशजी की भाँति उस घर-परिवार को श्री-समृद्धि से सम्पन्न करके साधक की समस्त भौतिक-बाधाओं का शमन कर देती है । परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि 'श्वेतार्क मूल' पूर्णतया शास्त्रीय-तान्त्रिक ढङ्ग से प्राप्त की जाएं और तद्नुसार ही उसका पूजन हो । पाठकों की सुविधा के लिए उसका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

तान्त्रिक प्रयोग के आधार :

आध्यात्म के क्षेत्र में कोई भी साधना—तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, पूजन, हवन, व्रत, उपवास, यज्ञ—हो, उसके लिए समय, स्थान, प्रयोज्य वस्तुएँ और विधि-विधान आवश्यक है । उनके अभाव में साधना अधूरी रहती है । या तो वह खण्डित हो जाती है, या पूरा फल नहीं देती । अतः किसी भी प्रयोग-साधना में इन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को अवश्य ही दृष्टिगत रखना चाहिए ।

समय-मुहूर्त्त :

श्वेतार्क-साधना में भी मुहूर्त्त अर्थात् समय (काल-वेला) का सर्वाधिक महत्त्व होता है । इसलिए सर्वप्रथम किसी स्थानीय पुरोहित-पण्डित से कोई शुभ-मुहूर्त्त मालूम कर लेना चाहिए ।

जिस दिन रविवार हो और पुष्य नक्षत्र चल रहा हो, वह दिन सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । इसे 'रविपुष्य-योग' कहते हैं । रविपुष्य-योग किसी भी साधना को प्रारम्भ करने के लिए सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है । इसी प्रकार गुरुपुष्य-योग (गुरुवार के दिन पुष्य-नक्षत्र की स्थिति) भी अत्युत्तम माना गया है । ज्योतिष-मर्मज्ञों की धारणा

है कि जड़ी-बूटी आदि तान्त्रिक वस्तुओं का संकलन, उनकी पूजा, प्रयोग आदि रविपुष्य के दिन विशेष फलदायी रहते हैं। जप, तप, भजन, पूजन, व्यापारिक-कार्य तथा अन्य शुभ कार्य 'गुरुपुष्य' के दिन प्रारम्भ करने से निश्चित सफलता प्राप्त होती है। वैसे, जिस दिन भी पुष्य-नक्षत्र हो वह सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त बन जाता है। हाँ, एक अपवाद भी है—शुक्रवार का पुष्य-योग 'यात्रा' तथा अन्य शुभ कार्यों के लिए वर्जित है। किन्तु इसका विकल्प यह है कि यदि शुक्रवार को 'पुष्य-नक्षत्र' न होकर, चतुर्थी की तिथि पड़ रही हो तो वह 'श्वेतार्क-साधना' के लिए अनुकूल मुहूर्त्त हो जाता है।

यदि किसी को जल्दी है, ओर 'रविपुष्य' या 'गुरुपुष्य' योग निकट भविष्य में नहीं मिल रहा, तो वह शुक्लपक्ष की चौथ (कृष्णपक्ष की चौथ भी ग्राह्य है) के दिन 'श्वेतार्क-साधना' प्रारम्भ कर सकता है। पुष्य-योग अथवा चतुर्थी तिथि न मिले और अन्य कोई शुभ-मुहूर्त्त (पुरोहित से जान लें, या स्वयं पंचाङ्ग में देख लें) जैसे—शतभिषा, स्वाती, चित्रा, हस्त, अनुराधा, अभिजित और अश्विनी में से कोई भी शुभ नक्षत्र चल रहा होऔर उस दिन—साध्य-सिद्ध, ब्रह्म, ऐन्द्र, शुभ, शुक्ल और शिव जैसा कोई शुभ योग भी पड़ रहा हो तो एक श्रेष्ठ मुहूर्त्त माना जाता है। ऐसे किसी शुभ-मुहूर्त्त का पता पहले से लगा रखें, और नियमानुसार 'श्वेतार्क-साधना' प्रारम्भ करें।

श्वेतार्क-प्राप्ति विधि :

यदि आपने पता लगा रखा है कि अमुक स्थान पर 'श्वेतार्क' का पौधा है, तो वहाँ से विधिवत् उसकी जड़ (श्वेतार्क-मूल) ले आयें। यदि किसी व्यक्ति ने आपको दे दी है, अथवा अन्य कहीं से मिल गयी है तो उसे कहीं एकान्त पवित्र स्थान में रख दें। उसका उपयोग 'रविपुष्य' के दिन ही प्रारम्भ करना चाहिए। यदि पौधे से ही लाना है, तो उसकी विधि इस प्रकार है :—

जिस दिन से पूजा (साधना) प्रारम्भ करनी है, (वह चाहे रविपुष्य हो, गुरुपुष्य हो, या अन्य कोई मुहूर्त्त हो) उसके ठीक एक दिन पूर्व सन्ध्या-समय अकेले, चुपचाप बिना किसी से बोले नहा-धोकर, शुद्धतापूर्वक, शान्त-चित्त से—उस पौधे के पास जायें। साथ में एक लाल धागा, जल, धूपबत्ती, माचिस, सिन्दूर भी लेते जायें।

'श्वेतार्क' पौधे के पास पहुँचकर उत्तर, पूर्व या पश्चिम की ओर मुख करके खड़े हों, और वृक्ष को साक्षात् गणेशजी मानकर हाथ जोड़ें। तदुपरान्त पौधे की जड़ में लोटे का जल (अर्घ्य रूप में गणेशजी को स्नान कराने की भावना से) डालें।

फिर, धूप, दीप दें और पौधे की किसी डाल में धागा (कलाया) बाँधकर प्रार्थना करें— हे गणेशजी ! हे श्वेतार्क देव मैं ! अपने कार्य की सिद्धि के लिए—कल आपको अपने साथ ले चलने के लिए आऊँगा, अतः आप कृपापूर्वक मेरे साथ चलकर मेरे अभीष्ट की पूर्त्ति करें ।

'शब्द' बदले भी जा सकते हैं, परन्तु 'भाव' यही रहना चाहिए कि आप वृक्ष देवता को निमंत्रण दे रहे हैं । इसके बाद उसे पुनः प्रणाम करके घर लौट आयें । रात में एकान्त-शयन करना चाहिए ।

प्रातः मुँह-अँधेरे ही उठकर नित्यकर्म से निपट लें और स्नान करके पौधे के पास जायें । साथ में कोई साफ कपड़ा या लकड़ी का (या फिर लोहे का ही) खुरपा जैसा साधन लिये रहें । वहाँ पहुँचकर पौधे को प्रणाम करें और गणेशजी का ध्यान करते हुए, पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके, पौधे की जड़ सावधानी से खोदें । जड़ टूटने न पाये, समूची निकले तो अति उत्तम है, अन्यथा जैसी भी मिले—माथे से लगाकर कपड़े में बाँध लें और चुपचाप घर ले आयें । इस पूरी प्रक्रिया में गणेशजी का ध्यान करते हुए मन्त्र, स्तुति कुछ जपते रहना चाहिए । कुछ नहीं मालूम हो तो—'श्रीगणेशाय नमः ही जपते रहें ।

श्वेतार्क-तन्त्र में प्रयोज्य : गणेशजी के जप-मन्त्र

- गं ।
- ॐ गं ।
- ॐ गं गणपतये नमः ।
- ग्लौं ।
- ॐ ग्लौं ।
- ॐ ग्लौं गणपतये नमः ।
- श्री गणेशाय नमः ।
- ॐ भालचन्द्राय नमः ।
- ॐ एकदन्ताय नमः ।
- ॐ लम्बोदराय नमः ।

यह एक विचित्र, सत्य किन्तु दुर्लभ संयोग है कि कभी-कभी 'श्वेतार्क-

मूल' ठीक गणेशजी की प्रतिमा के रूप में प्राप्त होती है । जड़ का मुख्य भाग 'तना' गणेशजी की स्थूल-काया जैसा होता है और उससे निकली शाखा, जड़ें, भुजाओं और शुण्ड (सूँड़) की रचना करती हैं । कोई-कोई जड़ बैठी हुई गणेश-प्रतिमा जैसी लगती है । मैंने देखा है, एक जड़ गणेश-प्रतिमा का रेखा-चित्र जैसी थी । कम से कम गणेशजी की सूँड़ की आकृति तो जड़ में अवश्य मिलेगी—ऐसा निश्चित है । प्राप्त जड़ को गौर से देखें तो लगता है—किसी हाथी की सूँड़ है ।

प्रसङ्गत: यहाँ कहना चाहूँगा—एक बार मेरा पुत्र 'उमेश' एक 'श्वेतार्क-मूल' ले आया था । वह ठीक गणेशजी के मस्तक और उससे निकली सूँड़ की आकृति जैसी प्रतीत होती थी । उसी रात बच्चे को गणेशजी ने स्वप्न में साकार-स्पष्ट दर्शन दिये थे । कई वर्षों तक वह मूल प्रतिमा मेरे घर में रही । और भी कई बार मैंने 'श्वेतार्क-मूल' में गणेश-प्रतिमा की स्पर्श झलक पायी है । इस समय भी मेरे पास एक वृहदकार श्वेतार्क-मूल है, जिसमें गणेशजी के मुखमण्डल की छवि स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है ।

पूजन-विधि :

श्वेतार्क-मूल प्राप्त हो जाने पर उसे साफ करके शुद्ध जल से स्नान करायें (धो लें) फिर लाल कपड़े पर स्थापित करके (कुछ विद्वान् पीला कपड़ा भी स्वीकार करते हैं) उसकी पूजा करें । पूजा में लाल चन्दन, हल्दी, अक्षत, पुष्प, सिन्दूर का प्रयोग किया जाता है । धूप, दीप देकर नैवेद्य के साथ कोई सिक्का भी अर्पित करें । इसके पश्चात गणेशजी का कोई मन्त्र जपें । मन्त्र-जप आरम्भ करने के पूर्व संकल्प कर लेना चाहिए कि मैं इतनी संख्या में जप करूँगा । माला में 108 दाने होते हैं। अत: 10 माला जप का अर्थ हुआ—1000 मन्त्र जप ! इसी प्रकार पूर्ण गणना करके निश्चित संख्या में माला द्वारा मन्त्र का जप करें ।

जप पूरा हो जाने पर उसी मन्त्र को पढ़ते हुए यथा-सामर्थ्य हवन करें । हवन-सामग्री में घी, शक्कर, तेल, जौ, अक्षत (चावल) अवश्य मिला लेना चाहिए । प्रत्येक आहुति में वही जप वाला मन्त्र पढ़ा जाता है, साथ में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग होता है जैसे मूल-मन्त्र है—'श्री गणेशाय नमः' तो हवन के समय आहुति देते हुए, इसे पढ़ा जायेगा—'श्री गणेशाय नमः स्वाहा' । इस प्रकार हवन पूरा हो चुकने पर कम से कम एक ब्राह्मण को (वह बालक या बालिका भी हो सकता है) भोजन कराकर दक्षिणा दें । इस प्रकार प्रथम दिन, 'श्वेतार्क-मूल' की पूजा करके उसे कहीं एकान्त पवित्र स्थान में, देव प्रतिमाओं के पास अथवा आलमारी में लाल कपड़े

के आसन सहित रख दें और नित्य उसका सिन्दूर, धूप, दीप से पूजन-दर्शन करते रहें ।

'श्वेतार्क-मूल' को साक्षात् गणेशजी मानकर जो व्यक्ति यह तान्त्रिक-साधना करता है, वह ज्ञान, सम्पत्ति, सुरक्षा और निर्विघ्न शान्ति प्राप्त कर सकता है ।

श्वेतार्क-गणपति :

'श्वेतार्क' के पुराने (20-25 वर्ष पुराने) पौधे की जड़ों में प्राकृतिक रूप से गणेश-प्रतिमा का निर्माण होता है । वैसे इस पौधे की किसी भी जड़ को देखें—वह गणेशजी की सूँड़ से बहुत साम्य रहती है ।

यदि जड़ खोदने में गणेशाकृति-मूल प्राप्त हो जाये-तब तो कहना ही क्या है, अन्यथा चाहे जिस रूप में जड़ प्राप्त हो, उसे घर ले आयें । पहले साफ पानी से, फिर दूध से स्नान कराकर, पुनः जल से धो लें, और कपड़े से पोंछकर सुखा लें । बाद में यदि स्वयं बना सकें तो अपने हाथों से, अथवा किसी बढ़ई (मूर्तिकार) से, उस जड़ के एक टुकड़े को जो लगभग दो इंच लम्बा और सुडौल हो, काटकर उस पर गणेशजी की प्रतिमा बनवा लें । कोई भी कलाप्रेमी व्यक्ति आसानी से चाकू द्वारा छील-छीलकर उस 'मूल-खण्ड' पर गणेश प्रतिमा उत्कीर्ण कर सकता है ।

यदि खोदते समय 'गणेश-प्रतिमा' नहीं मिली हो (यह प्रायः जड़ के अन्त में होती है, अतः सावधानी से जड़ को पूरी गहराई तक खोदें) और बढ़ई द्वारा जड़ के टुकड़े पर प्रतिमा नहीं बन सकती तो लाल चन्दन से अथवा सिन्दूर से, उस जड़ के टुकड़े पर गणेश जी चित्र (रेखा-चित्र) बना लें । यह भी गणेश-प्रतिमा के समान प्रभावशाली रहेगा । यदि चित्र बना सकना भी सम्भव नहीं है, तो जड़ के उस टुकड़े को लाल कपड़े के आसन पर प्रतिष्ठित करके उस पर स्वस्ति (卐) चिह्न बना दें । यह चिह्न पीले सिन्दूर और घी के मिश्रण से लेप बनाकर उससे अंकित करना चाहिए । स्वास्तिक चिह्न वस्तुतः गणेशजी का ही प्रतीक है । इसमें गणेशजी का सर्वाङ्ग समाहित है । अतः गणेश-प्रतिमा, गणेश-चित्र अथवा स्वस्तिक-चिह्न, जो भी जड़ के टुकड़े पर अङ्कित किया जायेगा, वह गणेशजी की प्रतिमा के तुल्य प्रभावशाली होगा । 'श्वेतार्क-मूल' से किसी भी रूप में गणेश-प्रतिमा बनायी जाए उसे 'श्वेतार्क-गणपति' कहते हैं ।

विविध-प्रयोग :

विशेष रूप से 'श्वेतार्क-मूल' जिन उद्देश्यों की पूर्त्ति में प्रयुक्त होती है, उनमें से कुछ इस प्रकार है :—

स्वास्थ्य, सुरक्षा, वशीकरण-तिलक, लेखनी, कामना-पूर्त्ति, स्तम्भन, (मैथुनिक), सौभाग्य-वृद्धि, व्याधि-शमन, स्वर्ण निर्माण आदि। यहाँ संक्षेप में उक्त उददेश्यों की पूर्त्ति हेतु 'श्वेतार्क-मूल' की प्रयोग विधियाँ लिखी जा रही हैं :—

स्वास्थ्य :

स्वस्थ-शरीर में स्वस्थ-आत्मा का निवास होता है। अर्थात् जिसका शरीर स्वस्थ है, उसी का मन भी स्वस्थ, सबल, आत्म-विश्वासी, धैर्यवान और विवेकी होगा। स्वास्थ्य-प्रगति के कई प्रयोग हैं :—व्यायाम, आहार-बिहार, चिन्तन और वातावरण ! 'श्वेतार्क-मूल' भी स्वास्थ्य-लाभ में सहायक होती है। उसकी विधि इस प्रकार है—जिस दिन 'रविपुष्य-योग' हो, प्रातः श्वेत-अर्क की जड़ ले आयें। उसे धोकर साफ कर लें, फिर दूध से स्नान करायें और गणपति मन्त्र द्वारा पूजा करके रखदें। इस पर सिन्दूर न चढ़ाकर, कहींजरा-सा कोने में स्पर्श करादें, बस ! यह जड़ कहीं रख दें। सूख जाने पर इसे खरल में कूट-पीसकर चूर्ण बना लें। प्रतिदिन, प्रातः स्नान करके, सूर्य की पूजा, अर्घ्य-दर्शन करें, और तीन माशा चूर्ण 250 ग्राम ताजे गाय के दूध के साथ सेवन करें। यह परम-पौष्टिक रसायन है। इसका प्रयोग भी किसी शुभ रविवार के दिन से करें। एक सप्ताह में ही इसका प्रभाव आ जाता है। इसे केवल सात दिन ही सेवन करना चाहिए। 'श्वेतार्क-मूल' का यह चूर्ण, गो-दुग्ध के साथ सेवन करने पर शरीर में ओज-तेज की पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

सुरक्षा :

आधि-व्याधि तथा भौतिक-दैविक बाधाओं से रक्षा के लिए 'रविपुष्य' योग में विधिवत् प्राप्त की गयी 'श्वेतार्क-जड़' की विधिपूर्वक पूजा करें। फिर उसे (एक छोटा टुकड़ा) किसी भी रूप में (ताबीज, कवच यन्त्र आदि में) धारण कर लें। यह प्रयोग समस्त वायव्य-बाधाओं—भूत, प्रेत, डाकिनी, नजर, टोना तन्त्र प्रयोग आदि से पूरी सुरक्षा रखता है।

वशीकरण-तिलक :

● शुभ-मुहूर्त्त में विधिवत् प्राप्त करके पूजित 'श्वेतार्क-मूल' से वशीकरण का भी तान्त्रिक प्रयोग किया जाता है। उसकी सरलतम विधि यह है कि गाय का घी-गोरोचन और श्वेतार्क-मूल की पहले से व्यवस्था कर रखें। जिस दिन 'रविपुष्य' योग हो, स्नान-पूजा से निपटकर श्वेतार्क-मूल को घी और गोरोचन

के साथ पत्थर पर चन्दन की भाँति घिसें। फिर अपने इष्टदेव और गणेशजी का ध्यान करते हुए माथे पर यह लेप तिलक की भाँति लगालें। यह तिलक सम्मोहनकारी होता है।

● एक प्रयोग और है :—

बकरी के मूत्र में 'श्वेतार्क-मूल' को घिसकर, (रविपुष्य-योग में ही) माथे पर तिलक की भाँति लगालें। यह तिलक भी सम्मोहन का प्रभाव उत्पन्न करता है।

● तीसरा प्रयोग इस प्रकार है :—

'श्वेतार्क-मूल' को पानी के साथ घिसें, या सूखी हो तो पीसकर चूर्ण बनालें। उसमें अपना 'वीर्य' मिलाकर भली-भाँति लेप बनालें। यह भी हो सकता है कि अपने वीर्य के साथ ही उसे घिसकर लेप बनालें। उस लेप को माथे पर चन्दन की भाँति लगालें। यह तिलक स्त्री जाति को साधक के प्रति सम्मोहित करता है। किन्तु इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। साथ ही इसके प्रयोग में अपना सामाजिक, आर्थिक स्तर और अन्य बातों को देखते हुए समान-स्तरीय नारी के प्रति-ही कामना करनी चाहिए। सामर्थ्य, पात्रता, सीमा, आयु, रूप-रेखा, स्वभाव, व्यवहार और सामाजिक स्तर सभी जगह हर काम में आड़े आते हैं। अत: किसी भी प्रकार का प्रयोग करें, उसके औचित्य और सम्भावनाओं पर चतुर्दिक से विचार कर लेना उचित होता है।

सौभाग्य-वृद्धि :

नाभि पर 'कमल-पत्र' और दायें भुजा 'श्वेतार्क-मूल' रविपुष्य योग के दिन धारण करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है।

कामना पूर्त्ति :

विधिवत् प्राप्त करके पूजा किये गये 'श्वेतार्क-मूल' से साधक की बहुविधि इच्छाएं भी पूर्ण हो जाती हैं। यहाँ कुछ विशेष कामनाओं की पूर्त्ति हेतु सरलतम प्रयोग लिखे जा रहे हैं :—

● साधक के निवास-स्थान (घर) से उत्तर-दिशा में स्थिति पौधे से प्राप्त 'श्वेतार्क-जड़' में वशीकरण और श्री-समृद्धि का प्रभाव निहित होता है। अत: वशीकरण अथवा श्री-समृद्धि (धन-वैभव) आदि की वृद्धि के लिए उत्तर-दिशा

में स्थित पौधे की जड़ लानी चाहिए। स्मरण रहे कि जड़ लाने और उसकी तत्कालिक पूजा करने के लिए—उस दिन रविपुष्य-योग होना आवश्यक रहता है।

● यदि किसी साधक को राजकृपा, राजकीय अधिकारी की अनुकूलता, सम्मान, उन्नति-कार्य में सफलता, दूसरों से स्नेह मान की प्राप्ति वांछित हो तो वह ऐसे वृक्ष से 'श्वेतार्क-मूल' प्राप्त करे, जो उसके निवास-स्थान से पूर्व-दिशा की ओर स्थित हो अर्थात्—पूर्व दिशा में स्थित 'श्वेतार्क-मूल' साधक को सम्मान, श्री-समृद्धि और कार्य-क्षेत्र में उन्नति तथा सफलता प्रदान करता है।

● रोग-नाश, शत्रु-पराभव, मानसिक-कष्ट तथा शोक-सन्ताप निवारण और अन्य वाधाओं के शमन हेतु ऐसे पौधे से 'श्वेतार्क-मूल' लेना चाहिए, जो दक्षिण-दिशा की ओर हो।

● विरोधियों को परास्त करने और शत्रुओं को नीचा दिखाने जैसे प्रयोग में वह 'श्वेतार्क-मूल' प्रयुक्त होती है, जो पश्चिम दिशा में उगे हुए पौधों से प्राप्त हो।

सारांश यह है कि जिस कार्य के लिए साधना करनी हो, तदनुकूल दिशा के पौधे से प्राप्त जड़ का प्रयोग विशेष लाभकारी होता है। वैसे, 'श्वेतार्क-मूल' सदैव-सर्वत्र लाभकारी और सिद्धिदायक होती है। किसी दिशा में प्राप्त हुई हो, उसका प्रयोग निर्द्वन्द मन से करना चाहिए। पूजन के समय यह भावना अवश्य होनी चाहिए कि "यह श्वेतार्क-मूल साक्षात् गणेशजी हैं।"

ग्रह-रक्षा :

'श्वेतार्क' का पौधा 'रविपुष्य' योग में यदि घर के दरवाजे पर (लान, सहन, फुलवाड़ी चबूतरे के कौने में—किसी भी जगह पर, जहाँ से वह घर के प्रवेश-द्वार ही सीध में हो, अर्थात् घर के प्रवेश-द्वार, से पौधे को देखा जा सके) लगा दें। पौधे के लिए उपयुक्त मिट्टी, प्रकाश, वायु और जल की समुचित व्यवस्था कर दें। यह प्रयोग ग्रह-रक्षा में बहुत सहायक सिद्ध होता है। जब तक वह पौधा रहेगा, घर में किसी भी आधि-व्याधि, नजर-टोना, तन्त्र-मन्त्र के दुष्प्रभाव और अवांछित वायव्य आत्माओं, दुर्भाग्य और दुष्ट-ग्रहों की वृद्धि का प्रभाव नहीं पड़ेगा। श्वेतार्क-पौधे के प्रभाव से ग्रह का प्रवेश-द्वार अभेद्य हो जाता है।

शरीर-रक्षा :

'श्वेतार्क-मूल' टुकड़ा बाहु या कण्ठ में धारण करने से शरीर की सुरक्षा रहती है। आकस्मिक आपदाएं और भूत-प्रेत नजर-टोटका आदि का प्रभाव उस व्यक्ति को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

सम्भोग-सुख :

सम्भोग-सुख का एकमात्र आधार है—स्तम्भन ! सम्भोग-रत स्त्री-पुरुष तभी कामानन्द का अनुभव करते हैं, जब पुरुष देर तक मैथुन-रत रहे, अर्थात्—उसका स्खलन न हो। स्खलन रोकने (वीर्य स्तम्भन) के कुछ प्रयोग श्वेतार्क-तन्त्र में भी हैं :—

● 'रविपुष्य' में प्राप्त और पूजित 'श्वेतार्क-मूल' का टुकड़ा किसी धागे या चीर के सहारे कमर में बाँधकर सम्भोग-रत हों। यह प्रयोग काम-शक्ति को बढ़ाते हुए 'वीर्य-स्तम्भन' करता है।

● 'श्वेतार्क-मूल' और 'कमल-पत्र' कमर में धारण करने से भी 'वीर्य-स्तम्भन' होता है।

● श्वेतार्क का दूध और मधु (शहद) मिलाकर लेप बनायें। इस लेप में श्वेतार्क-फल से प्राप्त रुई की बत्ती बनाकर तर कर लें। सम्भोग के समय यह दीपक जला दें। जब तक दीपक जलता रहेगा, पुरुष को शिथिलता का अनुभव नहीं होगा।

स्वर्ण-निर्माण :

स्वर्ण अर्थात् सोने का नाम सुनते ही मानव-मन एकबारगी चंचल हो उठता है। संसार की सबसे सुन्दर, स्थायी, आभावान्, बहु-उपयोगी, सर्वप्रिय और दुर्लभ धातु होने के कारण सोने को सदैव (सभ्यता के प्रत्येक युग में) संग्रहणीय माना गया है। स्वर्ण-प्राप्ति के लिए विश्व में जितने युद्ध आक्रमण, चोरी-डकैती, लूट और हत्या के काण्ड हुए हैं, उतने और किसी धातु के नहीं।

स्वर्ण अर्थात् सोना—धन-सम्पत्ति का चिरस्थायी रूप है। इसे धन-वैभव और श्री-सम्पन्नता का प्रतीक माना गया है। इसके प्रभाव, उपयोग क्षमता और अन्य गुणों के आधार पर नीतिकारों ने कहा है—जहाँ (जिसके पास) सोना है, संसार के सारे गुण वहीं निवास करते हैं। अर्थात्—जो व्यक्ति स्वर्ण-सम्पन्न (धनाढ्य) है, वही सर्वश्रेष्ठ है। यथा—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनाः,
सः पण्डितः स श्रुतिवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

किन्तु लोगों को इसमें एक कमी खटकती है—यह शोभा के साथ सोने में सुगन्ध भी होती, तब तो कहना ही क्या था ? यही कारण है कि लोग कभी-कभी किसी वस्तु या व्यक्ति में एक गुण के साथ कई अन्य विशिष्टता देखकर कह उठते हैं—"अरे, यह तो सोने में सुगन्ध है ।" किन्तु वस्तुतः सोने में सुगन्ध नहीं होती । नीतिकारों ने इसका कारण सृष्टिकर्त्ता विधाता की अज्ञानता माना है । चूँकि विधाता को कोई गुरु (मार्गदर्शक) प्राप्त नहीं कर रहा, इसलिए वे सृष्टि रचना में कई विसङ्गतियाँ कर बैठे—कई वस्तुओं की संरचना में पूरी गुणवत्ता भरना भूल गये । यथा—

गन्धं सुवर्णे फलभिक्षु दण्डे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दस्य ।
विद्वान धनी भूपति दीर्घजीवी,
धातः पुरा कोपि न बुद्धिदोष ॥

यद्यपि स्वर्ण एक धातु है, जिसका निर्माण प्राकृतिक रूप में भूगर्भ के भीतर होता है । विभिन्न वैज्ञानिक-पद्धतियों द्वारा भूगर्भ की खुदाई करके स्वर्ण-कण अथवा शिलाएं प्राप्त की जाती हैं, फिर उन्हें बहुविधि परिष्कृत करके शुद्ध स्वर्ण प्राप्त किया जाता है । परन्तु रसायन-शास्त्रियों ने वर्षों, दशाब्दियों तक शोध-अनुसंधान रत रहकर प्राकृतक रू में उत्पन्न होने वाले पदार्थों के विकल्प भी तैयार कर लिए थे । प्राचीन-महर्षियों ने स्वर्ण-निर्माण के भी अनेक सफल प्रयोग किये थे । एक प्रयोग श्वेतार्क से भी सम्बन्धित है । यद्यपि यह जटिल है, सहज-साध्य नहीं है, फिर भी यदि कोई धैर्यवान् (और सौभाग्यशाली) साधक यह साधना पूरी करले, तो वह स्वर्ण प्राप्त कर सकता है, इसमें संशय नहीं है ।

'श्वेतार्क-तन्त्र' में स्वर्ण-निर्माण की प्रक्रिया इस प्रकार बतायी गयी है :—

'श्वेतार्क' का कोई पुराना वृक्ष, जिसका तना मोटा हो- खोजें । रविपुष्य-योग में स्नान-पूजा के बाद उसके पास जायें । साथ में जल, दूध, सिन्दूर, पुष्प, धूप, दीप और लाल वस्त्र भी लेते जाएं । सर्वप्रथम पौधे को (तने को) स्नान करायें पहले जल से, फिर दूध से, पुनः जल से । उसके बाद चन्दन (लाल), सिन्दूर, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप से पूजा करें ।

इस समस्त प्रक्रिया में 'गणेश-मन्त्र' जपते रहें, पूजनोपरान्त किसी चाकू या वर्मा से सावधानीपूर्वक तने में एक गहरा छेद (गड्ढ़ा) बनायें । गड्ढ़े से निकला तने का बुरादा फेंके नहीं, कटोरी में सुरक्षित रखें । पर्याप्त गहरा और सुडौल गड्ढा

बनायें। यदि एक अण्डे को सिरे पर थोड़ा-सा तोड़कर, उसकी जर्दी बाहर कर दी जाये तो खाली अण्डे की जो स्थिति होगी, ठीक उसी प्रकार का गड्ढ़ा—उस 'श्वेतार्क के तने' में बनाना चाहिए। गड्ढ़ा बन जाने पर उसमें (पारा, जो आप साथ ले गये हैं) भर दें। इसके बाद बुरादे में मोम मिलाकर, उसी से वह गड्ढ़ा बन्द कर दें। ऊपर से लाल कपड़ा बाँधकर सिन्दूर लगा दें।

फिर पौधे की जड़ में दूध डालें। वहाँ एक थाला-सा बना दें, और नित्य उस पर दूध चढ़ाते रहें। थाले में भरा दूध पौधे की जड़ को सींचेगा। यह क्रिया प्रतिदिन करें। वर्षों बाद पौधे के पत्ते सोने जैसे पीले और चमकदार होने लगेंगे। यह स्वर्ण-निर्माण की सूचना होगी। जब पत्ते बिल्कुल पीले और सोने जैसे (पीतल जैसे भी) चमकने लगें, तब समझ लेना चाहिए कि साधना सफल हो गयी है। फिर किसी 'रविपुष्य' या 'गुरुपुष्य' योग में वह गड्ढा खोलकर, सावधानी से, पूर्व सुरक्षित 'पारा' निकाल लेना चाहिए। इस बार वह पारे के रूप में नहीं, ठोस स्वर्ण-पिण्ड के रूप में प्राप्त होगा।

यह साधना गुप्त रहस्यमयी और जटिल है, और सहज-साध्य नहीं है। इसमें 5, 7, 10, 12 वर्ष तक लग सकते हैं। क्या पता, इस अवधि में वह साधक स्वयं ही समाप्त हो जाये। ऐसी स्थिति में अपने किसी परम विश्वासी, आस्तिक, सद्विचारों वाले व्यक्ति को यह रहस्य बताकर उसे भविष्य में फल प्राप्ति होने तक, साधना करते रहने का निर्देश देना चाहिए। उसे 'सोना' न बताकर केवल यह कहा जाये कि "जब इस पौधे के पत्ते पीतल जैसे चमकने लगें, तब एकान्त में, उसके तने के धब्बे वाले स्थान को चीरकर देखना। जो कुछ मिले, उसे प्रसाद रूप में शिरोधार्य कर लेना।"

'सोना' बनाने के और भी कई वानस्पतिक-प्रयोग प्राचीन-ग्रन्थों में वर्णित हैं। किन्तु हमारा प्रतिपाद्य विषय स्वर्ण-सृष्टि नहीं, अपितु 'श्वेतार्क-साधना' है। अतः उसके सन्दर्भ में यह एक प्रयोग (स्वर्ण-निर्माण) लिख दिया गया है।

सारांश यह है कि 'श्वेतार्क-मूल' एक बहुत ही पवित्र, प्रभावी और चमत्कारी पौधा है। इसकी 'जड़' के भी सैकड़ों प्रयोग प्राप्त होते हैं। यह श्री-सौख्य, सुरक्षा, समृद्धि, सौभाग्य और आस्तिकता की भावना देती है। जो साधक विधिवत् इसकी पूजा करते हैं वे अवश्य ही सफल-मनोरथ होते हैं।

'श्वेतार्क-मूल' के चमत्कारों से मैं स्वयं भी प्रभावित हूँ। कई बार के अनुभवों से, मैं असंदिग्ध-भाव से इसकी प्रभावशीलता का साक्ष्य देता हूँ।

4 रुद्राक्ष

सामान्य परिचय :

'रुद्राक्ष' वनस्पति-जगत में सर्वाधिक पवित्र, प्रभावी, उपयोगी, प्रचीन और सर्वग्राह्य पदार्थ है । यह एक फल की गुठली अर्थात् बीज है ! इसकी उत्पत्ति —मलाया, इण्डोनेशिया, वर्मा, नेपाल आदि पूर्वी देशों में अधिक होती है। वैसे भारत में भी कहीं-कहीं इसके वृक्ष पाये जाते हैं। अब तो शौकीन लोग इसे अपने वगीचों और फुलवाड़ियों में भी लगाने लगे हैं ।

'रुद्राक्ष' को शिवजी के 'नेत्र' से उत्पन्न माना जाता है । इसीलिए इसका नामकरण 'रुद्राक्ष' (रुद्र+अक्ष) हुआ हैं। शिव-भक्तों को यह बहुत ही प्रिय है। वैसे, अन्य अनेक देवी-देवताओं की पूजा-स्तुति में भी इसकी माला धारण करने और उस पर मन्त्र-जप करने का विधान है । आध्यात्मिक-दृष्टि से जितना महत्त्व 'रुद्राक्ष' को प्राप्त है, कदाचित ही अन्य किसी वनस्पति को प्राप्त हो। अध्यात्म ही नहीं, भौतिक-जगत् के कई क्षेत्रों में भी विशेषकर 'चिकित्सा-क्षेत्र' में इसे बहुत मान्यता प्राप्त है ।

'रुद्राक्ष' एक पेड़ का फल है, जो गुच्छों में फलता है । यह फल गूलर के समान गोल होता है, जिसका गूदा कड़ा और मजबूती से रुद्राक्ष फल के बीज पर चिपका रहता है । गोल जामुन की कल्पना कर लें, ठीक वैसा ही होता है । परन्तु जामुन का गूदा कोमल होता है, जबकि यह बहुत ही कठोर है । इसकी टहनियों में फलों की संख्या विपुल होती है और वे पककर अपने आप गिर जाते हैं । पेड़ के नीचे यह फल निमौली की तरह बिखरे रहते हैं। जंगली जातियों के लोग इनका संग्रह करते हैं, फिर पानी में कई दिनों तक फलों को भिगोकर गूदे को मुलायम करके निकालते है। गूदा निकल जाने पर धुले हुए, 'रुद्राक्ष-बीज' बाजार में बिकने आते हैं ।

पके फल के बीज (दाने) उत्तम होते हैं, लेकिन कच्चे फलों के दाने न तो स्थायी होते हैं, न गुणवत्ता में ही पूरे उतरते हैं। कुछ जङ्गली बेर के बीजों की मिलावट भी उनमें होती है। अतः रुद्राक्ष खरीदते समय उसकी शुद्धता को भली-भाँति परख लेना चाहिए।

रुद्राक्ष की प्रजातियाँ :

आकार-भेद से 'रुद्राक्ष' की कई जातियां होती हैं। इनके बीज प्रायः गोल होते हैं, परन्तु अपवाद-स्वरूप कभी-कभी कुछ लम्बे, चक्राकार, उन्नतमुख, अर्द्ध-चन्द्राकार और चपटे भी पाये जाते हैं।

इसके दाने छोटे-बड़े भी होते हैं। बड़े दाने सुलभ होते हैं जबकि छोटे दाने कम पाये जाते हैं। लघुतम 'रुद्राक्ष' कालीमिर्च के दाने के बराबर होता है। उससे क्रमशः बड़े दाने मटर, बड़ी मटर, बेर और आँवले के बराबर होते हैं। मान्यता है कि लघुतम आकार वाले दानों की माला उत्तम होती है। कहीं-कहीं बड़े दानों को ही महत्त्वपूर्ण बताया जाता है। मेरी धारणा है, रुद्राक्ष-रुद्राक्ष है। वह चाहे जिस आकार में हो, यदि शुद्ध निर्दोष है, तो अवश्य ही धारणीय है।
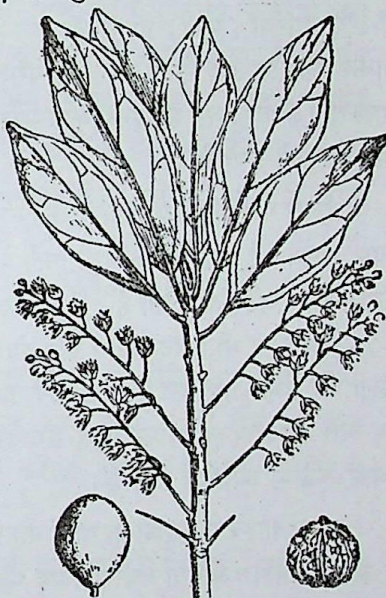
रुद्राक्ष
ELAEOCARPUS GANTRUS ROXB

छोटे दाने की माला पहिनने में सुविधाजनक होती है, परन्तु चूँकि वह कठिनाई से प्राप्त होता है, इसलिए इसका मूल्य अधिक है। बड़े दाने की माला को पहनने में असुविधा होती है, फिर आज का फैशन परस्त-युग ! वह दाना सरलता से मिलता है और खपत कम है, इसलिए सस्ता बिकता है। प्रभाव सभी का समान होता है। बड़े दाने की माला जप के लिए सुविधाजनक होती है। इसलिए लोग धारण करने में छोटे दाने और जप के लिए बड़े दानों की माला का प्रयोग करते हैं। सामान्यतः छोटी झरबेरी बराबर दानों वाली माला प्रयोग में आती है। इधर 20 वर्षों से योरोप, अमेरिका में भारतीय-दर्शन और अध्यात्म के प्रति विशेष रुचि

जागृत हुई है, अतः वहाँ के निवासी बड़ी आस्था, बड़े उत्साह से 'रुद्राक्ष' धारण करने लगे हैं ।

मुखभेद से वर्गीकरण :

रुद्राक्ष का दाना हाथ में लेकर गौर से देखें, जैसे छिले हुए नीबू अथवा आँवले के फल पर फाँकों की धारियाँ बनी होती हैं, ठीक वैसी ही धारियाँ आपको 'रुद्राक्ष' के दाने पर दीख पड़ेंगी । 'रुद्राक्ष' चाहे जिस आकार में हो, उसके दो सिरे होते हैं । ये धारियाँ एक सिरे से चलकर दूसरे सिरे को छूती हैं । इन्हें 'मुख' कहते हैं । जिस दाने पर जितनी धारियाँ हों, वह दाना उतना ही 'मुखी' कहलाता है । आमतौर से पाँच धारियों वाले दाने ही पाये जाते हैं । उन्हें 'पंचमुखी रुद्राक्ष' कहते हैं । ये धारियाँ (मुख) प्राकृतिक रूप में निर्मित होती हैं । इनकी संख्या एक से लेकर इक्कीस तक मानी जाती है । परन्तु वर्त्तमान समय में अधिकतम 14 धारियों वाले दाने ही देखे गये हैं । इनमें कुछ सुलभ होते हैं, कुछ दुर्लभ और कुछ तो सर्वथा अलभ्य जैसे होते हैं ।

जिस पेड़ में जिस आकार के फल आते हैं, वे लगभग समान ही होते हैं । आम जामुन की तरह प्रत्येक दाने वाले पेड़ अलग-अलग होते हैं। हाँ, दारियों की संख्या इनमें बदलती रहती है । जिस पेड़ से पंचमुखी रुद्राक्ष प्राप्त होते हैं, उसी से 6-7 मुखी दाना भी (यदाकदा) प्राप्त हो जाता है । हाँ, यह अवश्य है कि छोटे दाने वाला पेड़ एक जाति का है, बड़े दाने वाला उससे भिन्न जाति का—जैसे आम के पेड़ और उनके फल ! फिर भी हैं सब रुद्राक्ष ही, और पूजा तथा औषधीय प्रयोगों समान रूप से व्यवहृत होते हैं।

तन्त्र-शास्त्र में रुद्राक्ष के दानों का प्रभाव, उनके मुखों की संख्या के आधार पर अलग-अलग बताया गया है । यह भी माना जाता है कि प्रत्येक रुद्राक्ष (मुख-भेद के आधार पर) की (उसमें निहित) दैवी-शक्ति, उसका-मन्त्र, उसका प्रभाव—ये सब भिन्न-भिन्न होते हैं । पाठकों के लिए हम उनका संक्षिप्त-परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :—

एकमुखी रुद्राक्ष :

यह बहुत ही दुर्लभ होता है । इस पर केवल एक रेखा पड़ी होती है । यह गोल रूप में मिलता है और अर्द्ध-चन्द्राकार भी ! कुशल कारीगर नकली एकमुखी रुद्राक्ष भी बना लेते है । किन्तु उसमें असली का प्रभाव नहीं रहता । यह मूल्यवान

भी होता है । इसको धारण करने केअनेक लाभ तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णित हैं । समस्त रुद्राक्षों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । अगर यह कहीं मिल जाये, तो समझना चाहिए—शिवजी की कृपा प्राप्त हो गयी ।

सावधानी :

कोई 'रुद्राक्ष' हो, उसको खरीदते समय कुछ विशेष बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए । यथा—

● रुद्राक्ष का दाना वास्तव में 'रुद्राक्ष' हो, किसी दूसरे फल का बीज, या लकड़ी पर नक्काशी करके, बनाया गया न हो ।

● पके फलों के बीज से उत्तम 'रुद्राक्ष' निकलता है । कच्चे फलों से प्राप्त बीजों को 'भद्राक्ष' कहते हैं । यह गुणवत्ता की दृष्टि से नगण्य होता है, यद्यपि रूपाकार में रुद्राक्ष से पूरा साम्य रखता है । अतः भद्राक्ष न लेकर, भद्राक्ष अर्थात् कच्चे फल का बीज नहीं—पके फल का बीज (रुद्राक्ष दाना) खरीदें ।

● कच्चे-पक्के रुद्राक्ष की सरल पहिचान है—दानों को पानी में डाल दें । जो दाने डूबकर बर्तन की तलहटी में जा बैठें, वे असली शुद्ध और गुणवत्ता में पूरे हैं । पानी के ऊपर तैरने वाले दाने कच्चे, प्रभावहीन असुद्ध और अप्रयोज्य होते हैं ।

● चांहे जितना सुन्दर, छोटा या बड़ा दाना हो, उसे सर्वाङ्गपूर्ण होना चाहिए । घुना, कटा, फटा, छिद्रयुक्त, विकृत, भग्न-टेढ़ा—दोनों छेदों के बीच छिद्र-रेखा का अभाव, मलिन ज्योति-रहित, उदास, पूर्णतया चिकना (काँटों से रहित) दाना ग्राह्य नहीं होता ।

● प्रथम तो नया रुद्राक्ष ही खरीदें । किसी परिस्थिति में विशेष में यदि किसी का दिया हुआ (पहिना हुआ) लेना पड़े तो उसकी शुद्धता को भी भली-भाँति परख लेना चाहिए । यदि सही है तो ले लें, और किसी पात्र में गङ्गाजल या शुद्ध कूपजल में उसे डाल दें । 24 घण्टे बाद निकाल कर, धोकर साफ करलें, फिर विधिवत् उसकी पूजा करके, काम में लायें ।

● बहुत पुराना मैला-कुचैला, निर्जीव, कुपात्र व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त और चुराया हुआ रुद्राक्ष धारणीय नहीं होता ।

● ताँबे के दो टुकड़ों के बीच में रखने पर असली रुद्राक्ष का दाना घूमने लगता है ।

रुद्राक्ष का शोधन :

वैसे, 'रुद्राक्ष' का प्रयोग भारत में प्रागैतिहासिक-काल से होता आ रहा है। प्राचीन भारतीय-नरेश और ऋषि-मुनि इसकी माला धारण करते थे। आप किसी भी तपस्वी का, शिवजी का अथवा अन्य ऋषि-मुनि का चित्र देखें, वह रुद्राक्ष माला से अवश्य अलंकृत होगा।

किन्तु इतना उपयोगी सर्वप्रिय और परम-पावन होने पर भी रुद्राक्ष धारण के कुछ विशेष नियम हैं। भारतीय तन्त्र-शास्त्र नियमों की संहिता है। इसमें प्रत्येक वस्तु, प्रत्यके कार्य, चिन्तन और मनन, सबके अलग-अलग नियम हैं। नियमपूर्वक की गयी तन्त्र-साधना त्वरित फलदायी होती है। नियम-विरुद्ध कार्य, वह चाहे तन्त्र में हो, चाहे व्यवहारिक-जगत में कभी फलदायी नहीं होता। अत: रुद्राक्ष धारण के पूर्व उसके नियमों का निर्वाह अवश्य करना चाहिए। यह नहीं है कि कहीं से एक माला मोल ले आये और पहन लिया, बस ! यह तो एक तरह की औपचारिकता मात्र है,, श्रद्धा और नियम-पालन से इसका दूर का नाता भी नहीं है।

यों, शास्त्रीय-पद्धति बहुत जटिल है और इसके अनुसार रुद्राक्ष-शोधन आज के व्यस्त युग में सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। परन्तु मध्यम मार्ग का अवलम्ब लेकर यह क्रिया सार्थक रूप में पूरी की जा सकती है।

रुद्राक्ष के दाने (माला) देख-परख कर लायें। इन्हें किसी 'रविपुष्य-योग' में अथवा 'सोमपुष्य' योग में या फिर किसी भी सोमवार के दिन गङ्गाजल में धोकर थाली में रखें। यदि माला बनवा रखी है तो वह भी इसी विधि से शोधित होगी। गङ्गाजल के अभाव में शुद्ध सामान्य जतन ले लें। रुद्राक्ष को गङ्गाजल, शुद्ध दूध शुद्ध जल या चन्दन-मिश्रित जल से स्नान करायें। या पहले स्नान करादें, फिर उस पर चन्दन (श्वेत चन्दन घिसकर तैयार रखें) लगायें। कोई श्वेत-पुष्प—(धतूरा-मदार) चढ़ायें। अक्षत, बेलपत्र भी अर्पित करें, धूप-दीप दें और आरती करें। इस पूरी प्रक्रिया में शिवजी का कोई भी मन्त्र जपते रहें। मन्त्र के रूप में सर्वाधिक प्रचलित 'ॐ नमः शिवाय' बहुत ही प्रभावशाली रहता है। इस प्रकार पूजा करके शिवजी का ध्यान करें। यदि घर में उपलब्ध हैं तो रुद्राक्ष की पूजा करते समय शिवजी की प्रतिमा की भी पूजा करें। शिव और रुद्राक्ष की पूजा पूरी हो चुकने पर शिवजी से प्रार्थना करें —

'हे शिवजी ! आप कृपा करके इस रुद्राक्ष माला में निवास कीजिए। इसे

अपनी कृपा से अपने दिव्य प्रभाव से शक्तिशाली बनाइए। मैं इस माला को धारण करके सदैव आपका कृपापात्र रहूँ, सर्वत्र मेरी रक्षा कीजिए....... !'

इस प्रकार प्रार्थना करके उसी माला को धूप के धुएं में शोधित करके सुमेरु को माथे से लगायें और 11 माला उक्त मन्त्र का जप करें। पुनः वही मन्त्र पढ़ते हुए 21 आहुतियां देकर हवन करें और एक ब्राह्मण को भोजन-दक्षिणा दें। इसके बाद माला को शिवजी की प्रतिमा से स्पर्श कराकर, मन्त्रोच्चारण करते हुए, धारण करलें और भस्म का टीका माथे पर लगाकर शिवजी को प्रणाम करें।

यह रुद्राक्ष-धारण की यह सबसे सरल विधि है।

मान्यता है कि धारण की गयी माला को उतारना नहीं चाहिए। किसी विशेष स्थिति की बात अलग है, अन्यथा इसे पहिने ही रहें।

दैनिक-पूजा और मन्त्र-जप के लिए भी इसी प्रकार माला शोधित की जाती है। परन्तु उसे धारण न करके, लाल कपड़े की थैली (गोमुखी) में रखना चाहिए।

रुद्राक्ष माला धारण करने और उस पर दैनिक-पूजा का (किसी भी विशेष अनुष्ठान का) मन्त्र-जप करने से बहुविधि कल्याण होता है।

मुखानुसार विवरण :

रुद्राक्ष के दाने पर बनी धारियों को 'मुख' कहते हैं। सभी दानों पर बराबर संख्या में धारियाँ नहीं होती। अधिकांश दाने पाँच धारियों वाले (पंचमुखी) होते है, परन्तु किसी-किसी दाने पर 3, 4, 7, 8, 9, 10, 11 धारियाँ भी देखी जाती हैं। वैसे 1 से 21 धारी तक के रुद्राक्ष का उल्लेख मिलता है; परन्तु अधिकतर 14 धारी तक के दाने ही देखे गये हैं। सर्वसुलभ 5 धारी वाला होता है। दो धारी वाला चपटे आकार का दाना भी बहुत मिल जाता है, 6 धारी वाले भी थोड़े परिश्रम प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु 3, 4, 7, 8, 9, 10, 11 धारी वाले कम मिलते हैं। 3, 4 वाले तो कुछ सुलभ ही कहे जा सकते हैं, परन्तु 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13 धारी वाले दाने दुर्लभप्रायः होते हैं।

आर्ष-ग्रन्थों में मुखानुसार रुद्राक्ष दानों का वर्गीकरण करते हुए बताया गया है कि प्रत्येक दाने का सम्बन्ध अलग-अलग दैवी-शक्तियों से है, और उसके मन्त्र भी पृथक-पृथक हैं। कौन दाना (कितने मुख वाला) किस देवता का प्रतिनिधित्त्व करता है। उसका मन्त्र क्या है, उसका प्रभाव कैसा और क्या होता है, यह बड़े विस्तार

का विषय है। पाठकों की सुविधा और जिज्ञासा-पूर्त्ति के लिए उसे हम यहाँ संक्षिप्त सार-गर्भित रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं :—

रुद्राक्ष		देवता	मन्त्र
एकमुखी	:	शिव।	'ॐ ह्रीं नमः।'
दोमुखी	:	अर्द्ध-नारीश्वर।	'ॐ नमः।'
तीनमुखी	:	अग्नि।	'ॐ क्लीं नमः।'
चारमुखी	:	ब्रह्मा।	'ॐ ह्रीं नमः।'
पाँचमुखी	:	कालाग्नि रुद्र।	'ॐ ह्री नमः।'
छःमुखी	:	कार्त्तिकेय।	'ॐ ह्रीं हुं नमः।'
सातमुखी	:	सप्त मातृकाएं, सप्तर्षि।	'ॐ हुं नमः।'
आठमुखी	:	वटुक भैरव।	'ॐ हुं नमः।'
नौमुखी	:	दुर्गाजी।	'ॐ ह्रीं हुं नमः।'
दसमुखी	:	विष्णु।	'ॐ ह्रीं नमः।'
ग्यारहमुखी	:	रुद्र, इन्द्र।	'ॐ ह्रीं हुँ नमः।'
बारहमुखी	:	बारह, आदित्त्य।	'ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः।'
तेरहमुखी	:	कार्त्तिकेय, इन्द्र।	'ॐ ह्रीं नमः।'
चौदहमुखी	:	शिवजी हनुमानजी।	'ॐ नमः।'

रुद्राक्ष के तन्त्र-प्रयोग :

आयुर्वेद और तन्त्र में रुद्राक्ष का महिमा को 'अपार' कहा गया है। विविध प्रकार की दैहिक, दैविक और भौतिक समस्याओं के निदान हेतु प्रकारान्तर से रुद्राक्ष के अनेकानेक प्रयोग बताये गये हैं। यहाँ कुछ विशिष्ट समस्याओं के समाधान हेतु रुद्राक्ष की प्रयोग-विधियाँ लिखी जा रही हैं :—

शिवजी की कृपा-प्राप्ति हेतु :

● किसी भी वर्ग (मुख वाले दाने की) एक समूची शुद्ध, निर्दोष और विधिवत् शोधित माला धारण करने से शिवजी की कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

● ताँबे की कटोरी या तश्तरी में रुद्राक्ष के दाने रख लें और उन्हें प्रतिदिन शिवलिंग की भाँति पूजते रहें। इससे शिव-पूजन का फल प्राप्त होता है।

दैनिक-बाधाओं के निवारण हेतु :

तन्त्र-शास्त्र के अनुसार रुद्राक्ष का दाना (माला) शोधित करके धारण करने पर वायव्य-दोष, भूत-प्रेतादि, अदृश्य-आत्माएं, अभिचार-प्रयोग आदि के

दुष्प्रभाव से रक्षा होती है। रुद्राक्षधारी व्यक्ति कहीं भी जाये—जङ्गल, पर्वतीय-क्षेत्र, श्मशान, रणक्षेत्र अथवा अन्य किसी अपरिचित और संकटपूर्ण स्थान में वह तन-मन से पूर्णतः सुरक्षित रहता है। दैहिक-बाधाओं की शान्ति हेतु रुद्राक्ष को इस तरह धारण किया जाता है। यथा—

● रुद्राक्ष को चन्दन की भाँति पत्थर पर घिसें, फिर वह लेप शरीर पर लगादें। इस प्रयोग से समस्त प्रकार की भौतिक व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं।

● चन्दन की भाँति तैयार किया गया लेप, माथे पर टीका (तिलक) के रूप में धारण करने वाला साधक शिवजी का कृपापात्र हो जाता है। वह जहाँ पर भी जाये, लोगों पर उसका सम्मोहन जैसा प्रभाव पड़ता है। शिरो-पीड़ा के निवारण में भी यह प्रयोग सफल रहता है।

उदर-विकार नाशक प्रयोग :

एक लोटा पानी में रुद्राक्ष के पाँच दाने डालकर शाम को रख दें। प्रातः वह जल पियें और उसके बाद लोटे में दुबारा जल भरकर वही दाने में डाल दें। 24 घण्टे बाद वह जल फिर सेवन करें। यह रुद्राक्ष-जल उदर-विकारों को नष्ट करके रक्त-संचार में सहायक बनता है। इसके प्रभाव से सुस्ती, अनिद्रा, आलस, अम्लपित्त की पीड़ा, गैस, कब्ज और अन्य विकार दूर हो जाते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि जिस पात्र (लोटे) में जल भरा जाय, वह ताँबे का होना चाहिए, और जल भरने के पूर्व उसे भली-भाँति माँज, धोकर चमका लें। (ताँबे के पात्र में कभी खट्टी वस्तु रखकर नहीं खाना चाहिए, क्योंकि वह विषाक्त हो जाती है।)

बाल-रोगों पर रुद्राक्ष :

बच्चे के गले में एक या तीन दाने रुद्राक्ष पहिना दें। साथ ही रुद्राक्ष को पानी में घिसकर वह पानी बच्चे को पिलाएं और छाती पर (सोते समय) उसका लेप भी करें। इस प्रयोग से बच्चों का रात में सोते समय—रोना, डरना, चिहुँक उठना, अस्वाभाविक रूप में हाथ-पैर पटकना, ये सारी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

बन्ध्यत्त्व-निवारक प्रयोग :

मध्यम आकार का एक दाना शुद्ध नया रुद्राक्ष और एक तोला सुगन्ध-रास्ना—खरल में कूट-पीसकर चूर्ण बनाएँ। यह चूर्ण 2-3 माशे की मात्रा में दोनों समय प्रातः-सायं गाय के दूध से सेवन करें। ऋतुमती होने के प्रथम दिन से प्रारम्भ करके लगातार सात दिनों तक यह प्रयोग करें। इसके प्रभाव से वन्ध्यत्त्व दूर होकर, स्त्री को गर्भ-लाभ होता है। परन्तु यहाँ यह तथ्य भी स्मरणीय है कि उस महिला को स्वास्थ्य, आयु और दाम्पत्त्य-जीवन की दृष्टि से भी उपयुक्त होना चाहिए।
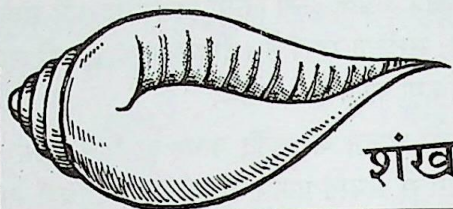
5 शंख

सामान्य परिचय :

विश्व के समस्त जल-जन्तुओं में एक मात्र 'शंख' ही ऐसा है जो रूपाकार में कुरूप होने पर भी सर्वाधिक पूज्य और मान्य है । हाँ, यह अवश्य है कि उसकी मान्यता और पूजा, सम्मान-भाव, केवल हिन्दू-धर्मावलम्बियों तक ही सीमित है । परन्तु हिन्दू धर्म के अनुयायियों की संख्या कम नहीं है, अत: 'शंख-पूजक' व्यक्ति भी कम नहीं है । विशेष रूप से यह ब्राह्मण परिवारों में देव-प्रतिमा के समान पूजा जाता है । पहले क्षत्रिय, वैश्य भी इसे रखते थे । शूद्रों में भी 'शंख ग्राह्य' था । चूँकि वर्ण व्यवस्था के अनुसार भारतीय समाज चार वर्णों में वर्गीकृत था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ! अत: वर्ण (रङ्ग) के आधार पर शंखों का भी वर्गीकरण कर दिया था, और प्रत्येक वर्ण अपने वर्ग का शंख प्रयोग में लाता था । शुभ्र (श्वेत) वर्णीय शंख ब्राह्मण माना जाता है । ब्राह्मण समुदाय के लिए वही प्रयोज्य माना गया है । लालिमायुक्त (लाल रङ्ग की आभा वाला) शंख क्षत्रियों का प्रतिनिधि है, अत: वह उनके समाज में प्रयुक्त होता है । पीताभ-शंख वैश्य समाज के लिए ग्राह्य बताया गया है, और श्याम-वर्णीय शंख शूद्रों के लिए प्रयोजनीय कहा जाता है ।

रामायण, महाभारत तथा अन्य अनेक पौराणिक-प्रसङ्ग (मिथकीय सन्दर्भ) इस तथ्य को बड़ी स्पष्टता से उजागर करते हैं कि प्राचीन-काल में भारतीय-संस्कृति ने शंख को वरीयता के साथ ग्रहण किया था । शंख को विजय, सौख्य, समृद्धि-शुभ और यश-प्रभाव का प्रतीक माना गया है । सामाजिक जीवन के लगभग सभी अवसरों पर शंख-ध्वनि को मान्यता प्राप्त थी । उत्सव, पर्व, पूजा, पाठ, हवन, जयकार, मङ्गल-ध्वनि, प्रयाण, आगमन, युद्धारम्भ, विजय-वरण, विवाह, विदा, राज्याभिषेक, देवार्चन—जैसे अवसरों पर शंख की ध्वनि से आसपास का वातावरण गूँज उठता था । इस प्रकार शंख का प्रयोग (ध्वनि उत्पन्न करने, बजाने में) सदैव शुभ और अनिवार्य माना जाता है ।

पौराणिक-सन्दर्भ में शंख :

कितने ही पौराणिक प्रसङ्गों में शंख का उल्लेख मिलता है। कई एक देवता और देवियाँ (शक्ति के प्रतिरूप) आयुध के रूप में शंख धारण करती थीं। वे प्रसन्नता व्यक्त करने और युद्ध-घोषणा (युद्धारम्भ की घोषणा) के लिए भी शंख-ध्वनि करते थे। श्रीमद्भागवत में 'महाभारत कथा' के अन्तर्गत 'गीता' वाले प्रसङ्ग में कौरव-पाण्डव सेनानियों के शंखों का स्पष्ट वर्णन मिलता है :-

''पाञ्चजन्य हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जय।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदर॥''..............

भगवान विष्णु की स्तुति में कहा गया है :—

''सशंख चक्रं सकिरीट कुण्डलं,
सपीत वस्त्रं सरसीरूहेक्षणम्।'' ....

देवी-स्वरूपों (दूर्गाजी के अवतारों) को भी शंखयुक्त बताया गया है :—

''शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।''

और—

''घण्टा शूल हलानि शंख मुसले, चक्रम् धनुः सायकम्।''

आज भी हमारे समाज में पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, आरती जैसे अवसरों पर विभिन्न वाद्यों के साथ 'शंखनाद' की प्रथा प्रचलित है। मान्यता है कि शंख का घोष (शंख-ध्वनि) जहाँ सुनाई पड़ती है उतने क्षेत्र का वायु-मण्डल भौतिक-वायव्य और दैविक प्रकोपों-बाधाओं से मुक्त हो जाता है। ओज, तेज, साहस, पराक्रम, चैतन्य, आशा और स्फूर्ति बढ़ाने के लिए—'शंख-ध्वनि' को वैज्ञानिक रूप में भी स्वीकार किया गया है।

अस्तु यह तो हुई शंखों की सामान्य बात, यहाँ हम शंख की उत्पत्ति, संरचना और तान्त्रिक-क्षेत्र में उसके प्रयोंगों की चर्चा करेंगे।

शंख की उत्पत्ति :

'शंख' समुद्र में उत्पन्न होने वाला एक कठोर-काय जीव है। वह कछुआ, घोंघा, सीपी, कौड़ी के वर्ग में आता है। आकार, रङ्ग और भार की दृष्टि से शंख अनेक प्रकार के पाये जाते हैं। समुद्र के अतिरिक्त किसी-किसी नदी में भी इनकी उत्पत्ति होती है, परन्तु वे आकार में बहुत छोटे (जौ के दाने से लेकर, निमौली तक) होते हैं। हम आमतौर पर जितने शंख देखते हैं, वे सब समुद्री उत्पत्ति हैं। रूपाकृति के आधार पर इनके भिन्न-भिन्न नाम (जातिगत) होते हैं। गोल, लम्बे, चौड़े, चपटे, ऊँचे, शंक्वाकार कई तरह के शंख दीख पड़ते हैं। मैंने रामेश्वरम् और कन्याकुमारी में शंखों की विभिन्न जातियाँ देखी हैं—एक से एक बढ़कर विचित्र और कौतूहलकारी ! सबसे छोटा शंख गेंहूँ के दाने के बराबर था, और बड़े शंख लगभग आकार 400 वर्ग इंच तक थे।

'शंख' एक अस्थि-घोलधारी जीव है—ठीक घोंघे जैसा ! यह पेट के बल रेंगता हुआ चलता है। वैसे यह पानी में ही रहता है, शायद ही कभी किनारे (जमीन) पर आता हो। आयुकाल पूरा हो जाने पर जव वह मर जाता है—इसका मांस सड़-गलकर जल में विलुप्त हो जाता है, और मात्र कङ्काल (हड्डी का खोल) शेष रह जाता है। अन्य जीवों में अनेक हड्डियाँ होती हैं, परन्तु शंख में केवल एक हड्डी होती है—यही खोल (कवच)। इसी को मछुए पानी से निकालकर बाहर लाते हैं और साफ करके बेचते हैं !

सभी शंखों का स्वर समान नहीं होता। कुछ तो बजते ही नहीं। जो बजते हैं, उनकी ध्वनि भिन्नतापूर्ण होती है। जो शंख देखने में सुन्दर, सुडौल और स्पष्ट मधुर तीव्र ध्वनि करने वाला हो, वह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। व्यावहारिक रूप में 'शंख' शब्द से शंख-जीव का नहीं, उसके इसी खोल (एकमात्र हड्डी से बना उसका रक्त-मांस रहित ढाँचा) का आशय लिया जाता है।

शंख : पवित्रता का प्रतीक :

'हड्डी' होकर भी 'शंख' पूज्य है। इसकी अपवित्रता असंदिग्ध है। देव-स्थानों में वह देव-प्रतिमाओं की भाँति श्रद्धा-सम्मान के साथ रखा जाता है। पौराणिक-प्रसङ्गों के आधार पर वह लक्ष्मी का सहोदर और विष्णु का प्रिय है।

जहाँ शंख होगा, वहाँ लक्ष्मी का निवास अवश्य रहेगा। लक्ष्मीजी ने विष्णु भगवान द्वारा पूछने पर स्वयं ही यह तथ्य उद्‌घाटित किया :-

'वसामि पद्मोत्पल शंख मध्ये,
वसामि चन्द्रे च महेश्वरे च।' ....

"मैं पद्म, उत्पन्न शंख, चन्द्रमा और शिवजी में निवास करती हूँ।"

कुछ लोग शंख को रूपाकार की दृष्टि से दरिद्रता-सूचक भी मानते हैं। परन्तु यह इनका भ्रम अथवा नास्तिकता-सूचक दृष्टिकोण है। शंख सदैव से भारतीय-संस्कृति और अध्यात्म के आरम्भिक चरण से ही पूज्य, पवित्र, शुभ माना जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि शंख के निषेध को ठीक से न समझ पाने के कारण ही ऐसी भ्रान्ति जन-मानस में फैल गयी है। वस्तुत: कुछ स्थितियों में 'शंख' को 'त्याज्य' कहा गया है। परन्तु उन परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में शंख को सदैव महत्त्वपूर्ण माना गया है।

शंख : त्याज्य कब ?

आजकल तो लोग मेज पर पेपर-पेट के रूप में, शौक पूरा करने के लिए शंख का प्रयोग करते हैं, उस पर तरह तरह की बेल-बूँटाकारी, पेण्टिंग और चित्रांकन कराते हैं, परन्तु शंख का वास्तविक प्रयोग है—पूजाघर में उसकी स्थापना और आरती पूजा के समय उसे बजाया जाना। पारवारिक-सुख संस्कारों के समय भी 'शंख-ध्वनि' करने को कुछ फलदायक माना गया है। परन्तु उन स्थितियों में 'शंख' त्याज्य हो जाता है, जब कि—

- किसी कारण से चोट या दुर्घटना से शंख फूट गया हो।
- शंख में दरार आ गयी हो, वह चटक गया हो।
- बजता न हो।
- बजाते समय हाथ से छूटकर गिर गया हो।
- ध्वनि में भिन्नता हो।
- रूपाकार में सुडौल न होकर, किसी विशेष कुरूपता से युक्त हो।
- आभाहीन हो। निष्प्रभ, बुझा हुआ शंख अशुभ होता है।

शंख का कोई भी स्थान टूटा न हो। यदि किनारे कहीं से कुछ चटक गये हों तो उसे रेती से रेतकर यथासंभव पूर्ववत् बना लें। न बन सके तो उसे नदी में प्रवाहित कर दें।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि घर में दो शंख (उनकी संख्या 2 हो, नहीं रखने चाहिए। या तो एक ही शंख हो या फिर 2 से अधिक 3, 5, 7, 9 आदि। इसी प्रकार शिवलिंग, गणेश-प्रतिमा आदि को भी 2 की संख्या में रखने का निषेध किया है।

हम जितने भी 'शंख' देखते हैं, भले ही वे किसी आकृति में हों, प्राय: वामावर्त्ती होते हैं। अर्थात्—उनका पेट बाँयीं ओर खुला होता है। उनके मुँह से पेट की ओर चलने वाली परतें बाँयी ओर घूमा करती हैं। वाम-आवर्त्त का अर्थ ही है—बायीं ओर की भँवर (घुमाव) अर्थात् जिसकी भँवर बाँयीं ओर को घूमी हो, वह वामावर्त्त है। तन्त्र-शास्त्र में वामावर्त्ती-शंख की अपेक्षा दक्षिणावर्त्ती शंख को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह शंख सामान्य शंखों के भिन्न दिशा में, अर्थात् दाँयीं ओर को घूमा रहता है। उसके मुख से पेट की ओर चलने पर भँवर का घुमाव दाहिनी ओर पड़ता है। दाँयी ओर की भँवर वाला शंख 'दक्षिणावर्त्ती' कहलाता है। मान्यता है कि यह शंख (दक्षिणावर्त्ती) बहुत ही शुभ, श्री-समृद्धि-दायक और अन्य प्रकार से वैभवकारी होता है।

'दक्षिणावर्त्ती-शंख' सरलता से नहीं मिलता। यह संसार के बहुत कम स्थानों में पाया जाता है। दुर्लभ होने के कारण इसका मूल्य भी अधिक होता है। यह आकार में गेंहूँ के दाने से लेकर नारियल के समूचे फल (जटा-सहित) के बराबर तक पाया जाता है। भारत के दक्षिणी समुद्र-तट पर 'रामेश्वरम्' और 'कन्याकुमारी' के आसपास ये शंख प्राप्त होते हैं। सामान्यत: यह शंख श्वेत-वर्ण का होता है परन्तु गौर से देखें तो इस पर लाल पीली या काली आभा या धारियाँ भी पायी जाती हैं। शुद्ध-श्वेत दूधिया वर्ण का जिस पर दूसरे रङ्ग की झलक न हो, ऐसा शंख सर्वोत्तम माना जाता है, परन्तु यह कदाचित ही कहीं दीख पड़े, अन्यथा यह पीताभ तथा रक्ताभ होता है।

छोटे आकार वाले शंख बहुधा काले होते हैं। उनमें कोई-कोई कुछ लम्बी आकृति के होते हैं। इनके भीतर शून्य स्थान नहीं होता। इनमें पत्थर जैसा पदार्थ जम जाने से ये 'जीवाश्म' (फासिल्स) बन जाते हैं। यह उनकी प्रचीनता का सूचक होता है। सामान्य पासिल्स काले, स्लेटी रङ्ग के होते हैं। कोई-कोई कुछ बड़ा और श्वेत भी होता है। उनमें किसी-किसी का जीवाश्म काँच की तरह चमकीला, स्फटिक की तरह सफेद और पारदर्शी होता है। परन्तु स्फटिक में केवल पानी जैसी सफेदी होती है, जबकि वह श्वेत जीवाश्म वाला शंख पारदर्शी और सतरङ्गी किरणों

से युक्त होता है । अमेरिकन डायमण्ड (सफेद जिरकन) की तह वह हीरे जैसी इन्द्रधनुषी किरणें प्रसारित करता रहता है । यह अति दुर्लभ और मूल्यवान् होता है । इसे 'हीरा शंख' कहते हैं । इस प्रकार दक्षिणावर्त्ती शंख निम्नलिखित रूपों में प्राप्त होता है ।

1. यवाकार—यह शंख छोटा गेंहूँ के दाने जैसा प्रायः स्लेटी रङ्ग में कभी-कभी लालिमायुक्त प्राप्त होता है । जीवाश्म बन जाने के कारण इसका भार कुछ बढ़ जाता है । यह सर्वाङ्ग सिर से पूँछ तक ठोस होता है । अपनी आकृति के कारण ही यवाकार (जौ के आकार का) कहलाता है ।

2. एलाकार—बड़ी इलायची के बराबर (या उससे बड़ा भी) सुपारी के समान—कभी-कभी नीबू के समान यह दक्षिणावर्त्ती शंख प्रायः तालाबों में पायी जाने वाली सफेद घोंघी जैसा होता है । वस्तुतः शंख और घोंघा एक ही जाति के जीव हैं । अन्तर इनके कङ्काल (अस्थि-कवच) की दृढ़ता का है । इलायची के समान होने से यह 'एलाकार' कहलाता है, परन्तु यह उपमा सीमित नहीं है । यह शंख इलायची से बड़े भी देखे जाते हैं । इनका जीवाश्म रूप (फासिल्स) रवेदार, पारदर्शी पत्थर का, मिश्री के टुकड़े जैसा होता है । शुद्ध 'हीरा-शंख' यही है ।

यह शंख जितना भी बड़ा हो, और इसके मणिभ (क्रिस्टिल्स) जितने अधिक स्वच्छ पारदर्शी और आभायुक्त हों, यह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है । 'हीरा शंख' का मूल्य दक्षिणावर्त्ती-शंखों से सबसे अधिक होता है । यहाँ प्रसङ्गवश में यही बताना चाहता हूँ कि ये सभी शंख मैंने प्रत्यक्ष देखे हैं । मैं जहाँ भी जाता हूँ-विचित्र वस्तुओं को खोजने, देखने का प्रयास करता हूँ । भोपाल, उज्जैन, ओंकारेश्वर, शिरड़ी, बँगलौर, मैसूर, तिरुपति, मद्रास, गोआ, कोयम्बटूर, त्रिचनापल्ली, और बम्बई आदि की यात्रा में ऐसी चीजें देखने के लिए यथासंभव प्रयास-रत रहा हूँ । उत्तर की यात्रा—हरिद्वार, केदारनाथ, बद्रीनाथ आदि में भी यह सब देखने का सौभाग्य मुझे मिला है ।

इसी प्रकार एक शंख और होता है—मोती शंख ! यह सर्वाङ्ग, सप्तवर्णी आभा बिखेरता है । इसकी आकृति सामान्य शंखों से भिन्न होती है । यह मुँह की ओर अति संकीर्ण और पेट-पूँछ की ओर क्रमशः गोलाई में विस्तृत होकर छत्राकार बना होता है । इसका खोल मोटा, मजबूत और भारयुक्त होता है । सुन्दरता में यह शंख सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । यह बजता भी है, और गोल होने के कारण बड़ी सफलता से अपने पास जेब में भी रखा जा सकता है । परन्तु देखने पर सहज ही पता न चलने

पर भी, यह दक्षिणावर्त्ती न होकर वामावर्त्ती होता है । इसकी बनावट कुछ ऐसी मोहक, भ्रामक और जटिल होती है कि व्यक्ति चकरा जाता है । शोभा की दृष्टि से यह शंख सर्वाधिक सुन्दर, उत्तम, माना जाता है । वैसे, धनदायक तान्त्रिक-प्रयोगों में दक्षिणावर्त्ती शंख का महत्त्व अधिक है ।

दूषित दक्षिणावर्त्ती शंख :

'दक्षिणावर्त्ती' शंख चाहे जितना बड़ा, भारी, चमकीला और भड़कीला हो, यदि वह सदोष है तो उसे नहीं लेना चाहिए । सामान्य रूप से, निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर सदोष दक्षिणावर्त्ती शंख की पहिचान की जा सकती है :—

- शंख कहीं से टूटा, फूटा चटका न हो ।
- शंख में कहीं दरार न हों, पपड़ीदार न हो ।
- घुन खाये जैसे काले-काले छेद न हों ।
- किसी भी प्रकार का दाग-धब्बा न हो ।
- शंख के शिखर सुरक्षित हों । भग्न-शिखर अथवा भग्न-मुख वाला शंख भी त्याज्य है ।

वर्णानुसार सभी 'शंख' उत्तम होते हैं—काले रंग का शंख केवल शूद्रों-तामसी-जनों—के लिए ग्राह्य होता हैं । उसे उच्च-वर्णीय लोगों को (ब्राह्मण-क्षत्रिय को) नहीं लेना चाहिए ।

सर्वश्रेष्ठ दक्षिणावर्त्ती शंख :

प्राय: सभी दक्षिणावर्त्ती शंख मुख बन्द किये होते हैं । वैसे, जन्तु विज्ञान के आधार पर कहा जाता है कि घोंघा वर्ग के सभी जीवों का मुख बन्द होता है । जिसे हम 'मुख' कहते हैं, वह वास्तव में उनका 'पुच्छ' भाग है । पेट के बल रेंगने वाले ये घोंघा वर्ग के सारे जल-जन्तु पेट के बल चलते हैं । वही आगे की ओर उनका मुख होता है, पीछे की ओर मलद्वार ! उसी को 'पूँछ' कहते हैं । अस्तु शंख में जो भाग खुला होता है, वह पेट कहलाता है, परन्तु वास्तव में वही 'मुख' है । जिसे 'मुख' कहते हैं, वह वस्तुत: 'पूँछ' है । उसी को काटकर (तोड़कर) गोल छेद बना लेते हैं और उधर से ही फूँक मारकर शंख बजाते हैं ।

इस प्रकार पूँछ की ओर वाले छेद से फूँक मारने पर भीतर से आवर्तों से **होती हुई** । (घुमावदार सुरङ्ग पार करके) घोंघे (शंख) के पेट (मुँह) से वह वायु **(फूँक)** ध्वनि बनकर निकलती है । दक्षिणावर्ती शंख बजाये नहीं जाते, केवल पूजा

में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु कई आचार्यों तथा ग्रन्थों का मत है कि "यदि निर्दोष, सर्वाङ्गपूर्ण, श्वेत वर्ण का दक्षिणावर्ती-शंख घर में हो और वह बजता भी हो, तो ऐसा शंख सर्वोत्तम होता है।" कुछ लोग इस शंख पर प्रहार करने तोड़कर उसका मुँह खोलने में परहेज करते हैं, इसीलिए यह प्राय: बिना छेद का ही मिलता है। इसे बजाने का लोभ त्यागकर केवल पूजा का माध्यम (प्रतिमा की भाँति) बनाये रखा जाये, यही उचित प्रतीत होता है। नीचे इसकी पूजन-विधि और प्रभाव का उल्लेख किया जा रहा है :—

दक्षिणावर्त्ती शंख की पूजन-विधि :

चूँकि यह शंख सदैव सर्वत्र सुलभ नहीं रहता, इसलिए इसकी प्राप्ति के लिए मुहूर्त्त वाला प्रतिबन्ध व्यावहारिक नहीं रह जाता। पहले किसी पुरोहित से शुभ-मुहूर्त्त पूछ लें। यदि उस दिन यह शंख मिल जाता है तो ले आयें। यह स्थिति सर्वश्रेष्ठ होती है। किन्तु ऐसा न हो सके तो जब भी जहाँ भी यह शंख मिले या तो बात तय करके घर में देव-प्रतिमाओं के पास रख दें। जब शुभ-मुहूर्त्त आये, तब उसकी पूजा करें। शुभ-मुहूर्त्त के लिए सामान्यत: रामनवमी, विजया-दशमी, दीपावली, कार्त्तिक-पूर्णिमा, रक्षा-बन्धन, गङ्गा-दशहरा आदि के दिन शुभ होते हैं। गुरुपुष्य-योग अथवा रविपुष्य-योग सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है।

स्थानीय पण्डित पुरोहित से पूछकर कोई भी शुभ दिन मालूम किया जा सकता है। दिन, तिथि, नक्षत्र और योग की गणना करके लोग शुभ-मुहूर्त्त बता देते हैं। प्राय: सभी अङ्ग एक साथ अनुकूल स्थिति में नहीं आते, एक न एक त्रुटि अवश्य रहती है फिर भी अधिकतम अङ्गों के आधार पर मुहूर्त्त निर्धारित किया जा सकता है। यहाँ विद्वानों में भी भेद पाया जाता है। कोई दिन को महत्त्व देता है, कोई तिथि को ! कोई नक्षत्र को वरीयता देता है, कोई योग को ! सब एक साथ मिल जायें तब तो कहना ही क्या है, किन्तु यदि ऐसा न हो सके तो रविपुष्य या गुरुपुष्य को मान्यता देनी चाहिए। यदि ऐसा मुहूर्त्त आने में बहुत विलम्ब है, और साधक को जल्दी है तो वह शुभ-नक्षत्र और शुभ-योग की उपस्थिति में साधना कर सकता है! आशय यह है कि दुर्योग में, अशुभ मुहूर्त्त में कोई काम नहीं करना चाहिए।

सर्वप्रथम दक्षिणावर्त्ती शंख कहीं से प्राप्त करें। फिर शुभ-मुहूर्त्त में अपनी दैनिक-पूजा में निवृत्त होकर, शुद्ध लकड़ी के पीठे पर चाँदी की तश्तरी पर रखें।

यह न हो सके, तो कोई भी धातु का पात्र (ताँबा-पीतल) ले लें। उस पर कमल-पुष्प का दल बिछायें। न मिले तो लाल कपड़ा बिछा दें। शंख को थाली में रखकर गो-दुग्ध, गङ्गाजल से भली-भाँति स्नान करायें। स्वच्छ नवीन वस्त्र से उसे पोंछकर, उसी तश्तरी पर रखें। सफेद चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप से पूजा करके, मेवा-मिठाई का नैवेद्य अर्पित करें और चाँदी का सिक्का चढ़ायें। यह न मिले तो प्रचलित सिक्का (रुपया) चढ़ा दें। साथ ही चाँदी का कोई टुकड़ा धोकर चढ़ा दें। उत्तम होगा कि इसके लिए पहले से ही 10-20 रुपये का चाँदी का गोल टुकड़ा या 'श्री-ॐ' जैसा कुछ बनवा लें और वही चढ़ायें। पूजन के उपरान्त परम-श्रद्धा भाव से मन्त्र का जप करें। जप पूरा हो चुकने पर सामान्य हवन-सामग्री में घी, शक्कर, जौ, तिल अक्षत मिलाकर उसी मन्त्र से 21 या 51 बार आहुति देते हुए हवन करे।

तदुपरान्त किसी भी एक (या अधिक) ब्राह्मण को भोजन दक्षिणा दें। यह समस्त क्रिया सम्पन्न हो चुकने पर 'शंख' को पात्र (तश्तरी) सहित उठाकर देव-प्रतिमाओं के पास रख दें। यदि घर में प्रतिमाएं नहीं हैं, तो वैसे ही किसी सुरक्षित आलमारी या ताक में रख दें और प्रतिदिन उसका पूजन करते रहें। यह भी हो सकता है कि भण्डार-घर, कोष, आलमारी, तिजौरी में उसे रख दें। किन्तु धूप, दीप अवश्य नित्यप्रति करना चाहिए। वैसे विधान तो यही है कि शंख को नित्यप्रति स्नान करायें तथा चन्दन, पुष्प, धूप, दीप से पूजा करें। पुष्प नहीं मिल रहे, तो जाने दें, जो भी उपादान सम्भव हो, उसे अवश्य प्रयोग करें। सामर्थ्य के अनुसार शंख पर सिक्के भी अर्पित करते रहें।

पूजन मन्त्र :

दक्षिणावर्त्ती शंख की पूजा के लिए निम्न में से कोई भी एक मन्त्र लिया जा सकता है। पूजा में आदि से अन्त तक उसी का जप करना चाहिए। शंख पर चढ़ाया गया जल अपने ऊपर तथा घर में छिड़क देना चाहिए। उसे इधर-उधर न फेंके। शास्त्र में लिखा है कि 'दक्षिणावर्त्ती शंख' में जल भरकर, उसे जिसके ऊपर छिड़क दिया जाये, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

मन्त्र—

- 1. ॐ श्री लक्ष्मी सहोदराय नमः।
- 2. ॐ श्री पयोनिधि जाताय नमः।
- 3. ॐ श्री दक्षिणावर्त्त शंखाय नमः।

- 4. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रीधर करस्थाय, पयोनिधि जाताय, लक्ष्मी सहोदराय, दक्षिणावर्त्त शंखाय नमः ।
- 5. ॐ ह्रीं श्रीं श्रींधर करस्थाय, लक्ष्मीप्रियाय, दक्षिणावर्त्त शंखाय मम चिन्तित फलं प्राप्तर्थाय नमः ।

इनमें सबसे सरल प्रथम मन्त्र है—ॐ श्री लक्ष्मी सहोदराय नमः। वैसे, साधक अपनी सामर्थ्य, श्रद्धा के अनुसार कोई भी मन्त्र जपकर इस शंख के अद्‌भुत प्रभाव का लाभ उठा सकते हैं ।

प्रभाव—

यदि 'शंख' निर्दोष है, विधिवत लाकर, पूजन द्वारा घर में स्थापित किया गया है, तो वह निश्चित रूप से प्रभाव इस प्रकार दिखायेगा—

1. दक्षिणावर्त्ती-शंख जहाँ भी रहता है, दरिद्रता वहाँ से निश्चित-रूपेण पलायन कर जाती है ।

2, अन्न भण्डार में अन्न, धन-भण्डार में धन, वस्त्र-भण्डार में वस्त्र, अध्ययन पूजन, कक्ष में रखने से ज्ञान, शयन-कक्ष में रखने से शान्ति की वृद्धि अवश्यमेव होती है ।

3. इसमें शुद्ध जल भरकर, व्यक्ति, वस्तु, स्थान, पर छिड़कने से दुर्भाग्य, अभिशाप, अभिचार, और दुर्ग्रह-प्रभाव समाप्त हो जाते हैं ।

4. ब्रह्म-हत्त्या, गौ-हत्त्या, बाल-हत्त्या जैसे पातकों से मुक्ति पाने के लिए दक्षिणावर्त्ती शंख में जल (हो, तो गङ्गाजल) भरकर सम्बन्धित व्यक्ति पर छिड़कने से वह दोषमुक्त हो जाता है ।

5. जादू, टोना, नजर, चलाव जैसे अभिचार-कृत्यों का दुष्प्रभाव भी इससे शान्त हो जाता है ।

6. निर्धनता-निवारण के लिए यह सर्वश्रेष्ठ वस्तु है ।

6 हाथाजोड़ी
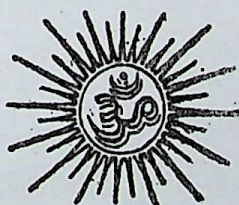
सामान्य परिचय :

प्रकृति का कला-विलास देखना हो तो 'हाथाजोड़ी' देखिये। वास्तव में यह एक जड़ी है, परन्तु अपनी अद्‌भुत रूपाकृति और विचित्र संरचना के कारण कोई खिलौना जैसा प्रतीत होती है। खिलौना भी ऐसा, जिसके निर्माण में बारीकी, क्रम-बद्धता और सौन्दर्य का अप्रतिम समावेश हो।

'हाथाजोड़ी' के कई नाम हैं—हाथाजोड़ी, हथजोड़ी, हथजुड़ी, हस्तजोड़ी, हस्ताजूड़ी, दुहथिया, भुजयुग्म और हथजोरिया। परन्तु सर्वाधिक प्रचलित नाम यही है—हत्थाजोड़ी या हाथाजोड़ी! वह एक पौधे की जड़ है, अतः वनस्पति श्रेणी में परिगणित होती है। इसकी उत्पत्ति भारत के बाहर—ईरान, फ्रान्स और जर्मनी तक में होती है। वनस्पति होने के नाते अनेक प्रकार के औषधीय-प्रभाव तो इसमें हैं ही, इसे तान्त्रिकों द्वारा भी बहुत मान्यता प्राप्त है। तन्त्र-शास्त्र में इसके अनेक और अद्‌भुत प्रयोग वर्णित हैं। मेरा अपना अनुभव है कि यदि 'हाथाजोड़ी' को विधिवत् सिद्ध कर लिया जाय, तो तन्त्र-साधना में कई उपलब्धियों का स्वामित्त्व प्राप्त हो सकता है।

भारत ही नहीं, सुदूर के देशों में यह औषधि तथा तान्त्रिक वस्तु के रूप में विख्यात है। इसे ईरान में 'चुबकउश्शान' या 'चुबक उशनान' कहते हैं। फारसी-उर्दू में 'बखूर-ए-मरियम (बखूरे-मरियम) के नाम से जानी जाती है। यूरोप के देशों में यह लैटिन भाषा के 'सायक्लमेन परसीकम' नाम से जानी जाती है।

मैंने इस ज़ड़ी को निकट से कई बार देखा-परखा है। इसकी अदभुत प्रभावशीलता ने मुझे कई बार विस्मित किया है। मैं स्वानुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि निस्सन्देह 'हाथाजोड़ी' तन्त्र-जगत् की एक अति प्रभावी, चमत्कारिक और विचित्र वस्तु है। इस जड़ी से मेरा परचिय कैसे हुआ, यह बताने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। फिर इसकी शक्ति का अनुभव कैसे हुआ, यह भी बताना चाहता हूँ।

प्रथम परिचय : प्रथम भेंट :

मेरा पारिवारिक-परिवेश आस्थापूर्ण, आध्यात्मिक और सामान्य सम्पन्न रहा है । अतः मुझे अनेक प्रकार के पौराणिक, ऐतिहासिक कथा-प्रसङ्ग पढ़ने-सुनने को मिलते रहे हैं । प्रभु की कृपा से मेरी ग्रहण-शक्ति कुछ अच्छी रही, इसलिए जो भी देखा-सुना या पढ़ा, वह मन-मस्तिष्क में स्थायी रूप से अङ्कित हो गया ।

तब बचपन ही था, मेरे ग्राम-साथी 'जुम्मन-मनिहार' (मोली) ने एक दिन मुस्लिम सन्त-फकीरों की अलौकिक शक्तियों का वर्णन करते हुए, कई एक चमत्कारी वस्तुओं के नाम गिनाये । उन्होंने बताया—"एक होती है, हाथाजोड़ी ! यह सबसे जोरदार चीज है । ऐसी करामात और किसी चीज में जल्दी नहीं मिलेगी । इसको साथ रखकर कहीं भी जाओ, चाहे जैसा मौका हो—कोई खिलाफ नहीं हो सकता । अगर कोई खून (कत्ल) भी कर डाले और इसे साथ में रखकर, थाने या कचहरी चला जाय तो उसे कुछ नहीं होगा । वह छूट जायेगा ।"

बाद से मोली ने बिस्तार से, जो कछ बताया उसका सारांश यह था कि 'हाथाजोड़ी' में प्रबल सम्मोहन-शक्ति होती है । अगर इसको सिद्ध कर लिया जाय तो, कहीं भी जाकर सफलता पायी जा सकती है । जिसके पास यह होगी, कोई उसका विरोध नहीं करेगा ।

बात वहीं की वहीं पड़ी रही । परन्तु मैं भूला नहीं । 'हाथाजोड़ी' की वह तथाकथित महिमा मुझे कभी-कभी चंचल कर देती थी । बहुत दिनों बाद मैं कानपुर आया तो एक तान्त्रिक वस्तुयें बेचने वाले से भेंट हुई । मैंने उससे 'हाथाजोड़ी' माँगी । तब तक मैंने उसे कभी देखा नहीं था, इसलिए पहिचान भी नहीं थी । मोली द्वारा बतायी गई रूप-रेखा स्मृति में थी । उस विक्रेता ने मुझे अनुरोध पर एक हाथाजोड़ी दी । पैसे चुकाकर मैं उसे अपने घर ले आया । रूपरेखा में मोली द्वारा बताये गये चिह्न उसमें थे, इसलिए शंका की कोई बात नहीं थी । वह असली 'हाथाजोड़ी' थी, इसमें संशय नहीं । यह तो बाद में पता चला कि वह असली होकर भी—पूरी नहीं, अधूरी थी । उसमें दो भुजायें नहीं थी बल्कि एक ही भुजा थी । खैर, मैं उसे ले आया, और जैसी कुछ विधि तब तक मैंने पढ़ी-सुनी थी, तदनुसार उसे शोधित करके रख लिया । बाद में मुझे किसी अधिकारी से काम पड़ा । समस्या जटिल थी । मैंने वह 'हाथाजोड़ी' जेब में रख ली और जिस अधिकारी के पास

गया । आश्चर्यमय प्रसन्नता से मैं खिल उठा, जब अधिकारी ने मेरे प्रति बहुत अनुकूल व्यवहार किया । बाद में भी कई बार उसको लेकर कई जगहों पर गया । लगभग सर्वत्र सफलता मिली । अगर एक-दो जगह भेंट न हुई,या काम न बना, तो भी कम से कम इतना तो रहा कि काम बिगड़ने नहीं पाया । लाभ नहीं हुआ तो हानि भी नहीं हुई । बाद में भेंट होने पर सम्बन्धित व्यक्ति, अधिकारी मेरे अनुकूल रहे । इस तरह प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर मैं आस्वस्त हो गया, बल्कि निश्चित धारणा बना ली कि यदि 'हाथाजोड़ी' निर्दोष हो, शुभ-मुहूर्त्त में लायी जाये और विधिवत् इसको पूजन द्वारा सिद्ध कर लिया जाय तो भौतिक-जगत की अनेक कठिनाईयों और जीवन की विधिवत् समस्याओं का समाधान पाया जा सकता है ।

वस्तुगत परिचय :

'हाथाजोड़ी' पौधे की जड़ है—यह तथ्य निर्विवाद है । परन्तु उस पौधे का क्या नाम है, कहाँ होता है, रूपरेखा कैसी है—इस विषय में मतभेद है । मैंने 2-3 पुस्तकें ऐसी देखी हैं, जिनमें 'हाथाजोड़ी' के पौधे का मन-चाहा नाम दे दिया गया है । एक सज्जन ने लिखा है — 'यह जड़ी ब्रह्मदण्डी पौधे से प्राप्त होती है और यह ब्रह्मदण्डी वही पौधा है ,जिसे हम 'निर्गुण्डी' कहते हैं ।' किन्तु यह विवरण नितान्त अशुद्ध, भ्रामक, कल्पनाधारित और मिथ्या है । 'ब्रह्मदण्डी' और 'निर्गुण्डी' दोनों भिन्न वनस्पतियां हैं । इनके पौधे—फूल, पत्ती, रङ्ग, गुण-प्रभाव सब एक-दूसरे से नितान्त भिन्न होते हैं । और जहाँ तक 'हाथाजोड़ी' की बात है, उसका इन दोनों में से किसी का भी—दूर का भी रिश्ता नहीं है । वह न निर्गुण्डी की जड़ है, न ब्रह्मदण्डी की ! उसके पौधे का अस्तित्त्व सर्वथा अलग-स्वतन्त्र है ।

मैंने इसके पौधे को नहीं देखा, परन्तु अध्ययन अनुभव से मानता हूँ कि यह एक वन्य वनस्पति है, जो सर्वत्र सुलभ नहीं । भूमि, लोभ और विकास-व्यामोह ने आज के युग में प्रकृति का रूप ही विकृत कर दिया है । क्या समाज, क्या शासन—दोनों ही पर्वत-वनों को विलुप्त करने पर सन्नद्ध हैं । फलस्वरूप वन और उनमें उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ (जीव-जन्तु भी) लुप्तप्राय: हो चले हैं । और तो और, कई प्रकार की घासें भी अलभ्य हो गयीं हैं, जिन्हें चरकर पहले हमारे पशु अपनी क्षमता और वंश परम्परा सुरक्षित रखते थे । अस्तु, 'हाथाजोड़ी' का पौधा मध्य-प्रदेश और राजस्थान के कुछ भागों में अपेक्षाकृत सुलभ है, वैसे तो कहीं भी मिल सकता है । फिर भी है, यह दुर्लभ वनस्पति ! जड़ी-बूटी के विक्रेता, सपेरे,

तान्त्रिक और वन्य जातियों के लोगों-नट, भेड़िया, कंजर, मदारी, कपरिया आदि से बात करने पर मिल जाती हैं। पहले बहुत सस्ती थी, परन्तु पुस्तकों द्वारा इसकी महिमा, गुणवत्ता और बहुउपयोगिता का प्रचार हो जाने से अब बेचने वाले भी चतुर हो गये हैं, और मनमानी कीमत वसूल करते हैं। मैंने इसे एक-सौ रुपये से भी अधिक दामों में इसे बिकते देखा है।

अपने पौधे की जड़ में इसकी दो शाखायें दोनों हाथ फैलाये ऋतु-रेखा सी बनती रहती हैं। जानकार लोग इसे खोदकर उसी गीली (हरी-मुलायम) स्थिति में दोनों भुजाओं को समेटकर एक में मिला देते हैं। इस तरह दोनों की दाँयीं-बाँयीं फैली भुजाएं सामने एक सीध में आकर अंजलि-वद्ध रूप में हो जाती हैं। दोनों हाथों में हथेलियाँ और उन पर उँगलियां होती हैं। ये उँगलियाँ भीतर की ओर मुड़ी हुई बँधी मुट्ठी के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। यह दृश्य बड़ा सुन्दर, कौतूहलकारी और स्मरणीय होता है। यही असली हाथाजोड़ी है, जो विभिन्न-तांत्रिक प्रयोगों के लिए विख्यात है।

यह बात अलग है कि जलवायु और मिट्टी के भेद से, विभिन्न स्थानों में हाथाजोड़ी की रूपरेखा में समता होते हुए भी आकार और वर्ण (रङ्ग) का अन्तर होता है। रूपरेखा में भी यद्यपि सामान्य समता रहती है, परन्तु गौर से देखें तो पता चलता है कि जैसे हर आदमी का चेहरा भिन्नता लिए होता है, वैसे, भी हर हाथाजोड़ी की बनावट (रूपरेखा) में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। लेकिन उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह अपने में सर्वाङ्ग, सम्पूर्ण हो- यही पर्याप्त है। छिन्न, भग्न, कटी, टूटी, सछिद्र, बिकृत 'हाथाजोड़ी' विकृष्ट मानी जाती है। उसका प्रयोग वर्जित है। सुन्दर, सुडौल, पुष्ट, सर्वाङ्गपूर्ण गौर-वर्ण, आभा-युक्त, आकर्षण और सुदृढ़ हाथाजोड़ी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। परन्तु पानी में भीगने पर खराब हो जाती है, अतः पानी से बचना चाहिए। आकार की श्रेष्ठता इसके गुणों को भी श्रेष्ठता प्रदान करती है। छोटी हो या बड़ी उसका सुडौल और सम्पूर्ण होना ही प्रमुख गुण है।

मैंने एक बार लहसुन के बड़े जवे के बराबर, बहुत ही छोटी किन्तु अति सुन्दर 'हाथाजोड़ी' देखी थी। पास पैसे कम होने के कारण उसे खरीद न पाने का परिताप आज भी सालता रहता है। इसी प्रकार एक बार एक बाबा ने प्रसन्न होकर मुझे भेंट-स्वरूप एक बहुत बड़ी सर्वाङ्ग, सुन्दर पुष्ट 'हाथाजोड़ी' दी थी। मेरे एक मित्र महोदय भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने लोभवश वह मुझसे माँग ली धर्मसंकट में

पड़कर मैंने वह उन्हें दे दी। उतनी बड़ी 'हाथाजोड़ी' मैंने आज तक नहीं देखी बाद में उस बाबा को पता चला तो उसने मेरी बहुत भर्त्सना की—''बाबूजी, आपकी किस्मत ने साथ नहीं दिया, इसीलिए वह आपके हाथ से निकल गयी। उसे मैंने काफी कीमत पाकर भी नहीं बेचा था वह दुर्लभ थी.......... आपके मित्र बड़े चालाक निकले, वह आपकी सज्जनता को लूट बैठे..........खैर, अब जो होना था वह हो गया। आप कहीं से एक छोटी-मोटी ले आयें और उसे पास रखें। बहुत बढ़िया चीज है, आपको फायदा होगा।''

अस्तु, वनस्पति जगत में 'हाथाजोड़ी' एक बहुत ही अद्‌भुत, चमत्कारी दिव्य शक्ति-सम्पन्न और तान्त्रित-प्रयोगों के लिए निश्चित रूप से प्रभावशाली वस्तु है। किन्तु अन्य वनस्पतियों की भाँति इसे किसी शुभ-मुहूर्त्त में विधिवत निमंत्रण देकर ले आना असंभव जैसा है, क्योंकि इसका पौधा सर्वत्र सुलभ नहीं होता। कहीं हो भी तो उसे पहिचाने कौन ? यों वनस्पति विज्ञानियों ने उसके बारे में संकेत दिये हैं कि इस पौधे के पत्ते एक ओर हरे, पीठ की ओर सफेद होते हैं, जिसे रोमावली भी प्राप्त होती है। पौधे की टहनी पर गुलाबी रङ्ग का फूल होता है, परन्तु किसी-किसी पौधे पर नीली रंगत के फूल भी पाये जाते हैं। यह पौधा प्राय: झाड़ियों के मध्य उगता है, और आर्द्र (भीगी) जमीन इसके लिए बहुत अनुकूल पड़ती है। इसकी जड़ गोलाई लिये (शकरकन्द जैसी) होती है, जो सामान्यत: श्याम वर्ण की देखी जाती है। इसी जड़ से कोई शाखा निकलकर 'होथाजोड़ी' का रूप धारण कर लेती है। इसकी बनावट अद्‌भुत और कलापूर्ण होती है। बन्द मुट्ठी के आकार में इसकी अँगुलियां कौतूहलकारी होती हैं। भारत में—मध्य-प्रदेश और राजस्थान में इसके पौधे को 'बिरवा' कहते हैं।

जो भी हो, यह विलक्षण वस्तु है, और इसे कहीं से भी (जनजातियों, जङ्गली-जातियों, पंसारियों, तान्त्रिकों अथवा किसी से भी) खरीद लायें और किसी शुभ-मुहूर्त्त में विधिवत् पूजन करके रख लें। प्रकारान्तर से यह अनेक कार्यों की सिद्धि में सहायक होती है।

हाथाजोड़ी की पूजन-विधि :

किसी 'रविपुष्य' योग के दिन प्रात: नहा-धोकर शुद्ध स्थान पर बैठें। लाल कपड़े के आसन पर 'हांथाजोड़ी' को भीगे कपड़े से पोंछकर (स्नान कराकर) रख दें। फिर उस पर सिन्दूर, कपूर, लौंग, इलायची, अक्षत चढ़ायें। लाल फूल और लाल चन्दन भी चढ़ा सकते हैं। इसके बाद लोबान की धूप दें और आरती उतारें।

तत्पश्चात कोई सिक्का चढ़ाकर, इसके मन्त्र को जप करें । जप-संख्या अधिकतम होनी चाहिए । कम से कम 11 माला या फिर 21, 51, 101 माला, जो भी संभव हो जपें ।

जप पूरा हो चुकने पर, सामान्य हवन-सामग्री में लोबान या गूगल मिलाकर, असम्भव हो तो—केवल लोबान या गूगल से ही पुन: 21 बार मन्त्र पढ़ते हुए, आहुति देकर हवन करें । हवन पूरा हो चुकने पर उसे उठाकर कहीं सुरक्षित रख दें, और किसी एक ब्राह्मण-बालिका को भोजन कराकर दक्षिणा दें । इस विधि से यह शुद्ध और प्रभावशाली हो जायेगी ।

हाथाजोड़ी का प्रभाव :

इस जड़ी का सर्वाधिक प्रभाव इसकी 'सम्मोहनशीलता' है । साधक इसे लेकर कहीं भी जाए—उसका विरोध नहीं होगा । सम्बन्धित व्यक्ति अनुकूल आचरण व्यवसार करेगा । वशीकरण, सम्मोहन, आकर्षण, धन-वृद्धि, सुरक्षा आदि के लिए यह परम उपयोगी वस्तु है । किन्तु प्रेम और सम्मोहन वशीकरण के लिए इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए । कारण कि यह मनोरथ की पूर्त्ति भले ही कर दे, परन्तु समाज विरोधी और अनैतिक कार्य का फल अन्तत: प्रयोक्ता को भोगना ही पड़ता है । अत: इसके प्रयोग में विवेकपूर्वक औचित्त्य का ध्यान रखना चाहिए ।

मन्त्र :

'हाथोजोड़ी' में चामुण्डा देवी का वास होता है । यह देवी-दुर्गा का एक रूप है । चण्डी, चण्डिका, चामुण्डा, दुर्गा, काली आदि सब एक ही शक्ति के विभिन्न रूप हैं । इनमें से किसी भी शक्ति की साधना करें दुर्गाजी की कृपा प्राप्ति होगी । तो भी 'हाथाजोड़ी' के लिए—चामुण्डा देवी अथवा महाकाली जी के मन्त्र विशेष प्रभावी होते हैं । साधक-जन निम्नांकित में से कोई एक मन्त्र जपकर 'हाथाजोड़ी' सिद्ध कर सकते हैं । ध्यान रहे कि यह सारी साधना एकान्त में और गुप्त रूप से करनी चाहिए । मन्त्र इस प्रकार हैं :—

चामुण्डादेवी

- ॐ चामुण्डायै नमः ।
- ॐ महाकाल्यै नमः ।
- ॐ नमश्चिण्डकायै नमः ।
- ॐ किलिकिलि स्वाहा ।

प्रयोग-भेद :

धन-वृद्धि के लिए—पहले 'हाथाजोड़ी' की विधिवत् पूजा करके इसे एक डिब्बी में रख लें। बाद में प्रतिदिन पूजा के समय इसे सामने रखकर धूप-दीप दें, कोई एक सिक्का चढ़ा दें और '**ॐ चामुण्डायै धनं देहि**' मन्त्र का 108 बार (एक माला) जप करें। जप-साधना के दिनों में संयम से रहें। थोड़े दिनों की साधना से ही आर्थिक परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होगा। शत्रुओं से सुरक्षा के लिए भी यह साधना परम उपयोगी है।

वशीकरण के लिए :

उपरोक्त विधि से पूजन करके परम श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र का जप करें :—

"ॐ चामुण्डादेवी..................... मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।"

यहाँ रिक्त स्थान पर वांछित व्यक्ति का नाम लें। यदि मन्त्र को इस रूप में जपने में असुविधा हो रही हो तो सामान्य भाषा में अपनी कामना-प्रार्थना एक वाक्य में निरन्तर जपते रहें :—

" हे माता चामुण्डाजी.............को मेरे वशीभूत कर दीजिए।"

ध्यान रहे कि इस वाक्य में कोई परवर्त्तन न हो, अन्यथा ध्वनि दोष के कारण साधना खण्डित हो जायेगी।

मन्त्र-सिद्ध 'हाथाजोड़ी' को गले या भुजा पर धारण करने से भी वशीकरण होता है।

सम्मोहन के लिए :

लगभग उपर्युक्त विधि से ही यह प्रयोग भी होता है। इन सभी कार्यों के मन्त्र-जप की एक सरलतम विधि यह है कि साधक, पूजनोपरान्त देवी से प्रार्थना करे—"हे माता ! मेरी .... समस्या है। आप कृपा करके मेरा यह कार्य पूरा कर दीजिए, मेरा यह संकट दूर कर दीजिए, अमुक व्यक्ति .... को मेरे अनुकूल कर दीजिए, मेरी दरिद्रता का निवारण कीजिए..................... आदि।"

इसके बाद हाथ जोड़कर प्रणाम करें, और पूर्वोक्त चार मन्त्रों में से कोई भी एक मन्त्र जपना प्रारम्भ कर दें। नियमित रूप में, एक निश्चित संख्या में प्रतिदिन मन्त्र-जप किया जाये, तो उसका अद्‌भुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

औषधीय-प्रयोग :

आयुर्वेद और तन्त्र-शास्त्र में 'हाथाजोड़ी' को अनेक रोगों के निवारण में प्रयोजनीय कहा गया है। कुछ प्रमुख समस्याओं में इसकी प्रयोग-विधि निम्न प्रकार से की जा सकती है :—

'हाथाजोड़ी' को पीसकर लेप बनायें। यह लेप पेट पर चुपड़कर लेटें रहें। इसके प्रभाव से मलावरोध (कब्ज) का विकार नष्ट हो जाता है।

प्रसव-सुविधा :

यदि प्रसव-काल में किसी महिला को कष्ट हो रहा हो, तो 'हाथाजोड़ी' को पानी में घिसकर, चन्दन की भाँति लेप तैयार करें। यह लेप गर्भिणी की नाभि पर अथवा नाभि, पेट, पेडू के पूरे क्षेत्र पर चुपड़ दें। इसके प्रभाव से वह सुखपूर्वक प्रसव कर सकेगी।

गर्भ-निवारण :

'हाथाजोड़ी' का चूर्ण सेवन करने अथवा गर्भिणी के पेट पर हाथाजोड़ी घिसकर लेप करने से गर्भ नष्ट हो जाता है। किन्तु यह प्रयोग बहुत सावधानी से, किसी विशेष संकट की स्थिति में ही, चिकित्सक का परामर्श लेकर चलना चाहिए। कारण कि किसी-किसी महिला को इसके प्रभाव से, गर्भपात के बाद कुछ दिनों के लिए मूर्च्छा (हिस्टीरिया) की व्याधि ग्रस्त कर लेती है। वैसे, गर्भपात जैसे घातक प्रयोग न किये जायँ, यही उत्तम है।

मूत्रावरोध-निवारण :

किसी भी कारण से यदि पेशाब बन्द हो गया हो तो 'हाथाजोड़ी' को पानी में घिसकर, इसका लेप नाभि से पेडू तक (मूत्राशय के ऊपर) करें। इसके प्रभाव से मूत्रावरोध दूर होकर, पेशाब खुलासा उतरने लगेगा।

मासिक-स्राव-शोधन :

अनियमित, अवरुद्ध, अल्प, मासिक-स्राव की स्थिति में—'हाथाजोड़ी' का चूर्ण कपड़े की पोटली द्वारा जननेन्द्रिय में रखें—समस्त विकार दूर होकर, मासिक-स्राव खुल जायेगा।

7 गोरोचन

सामान्य परिचय :

तन्त्र-शास्त्र में जिन अनेक वस्तुओं को अति आवश्यक और निश्चित प्रभावी बताया गया है, उसमें 'गोरोचन' भी एक पदार्थ है। यह धातु अथवा वनस्पति न होकर, गौ (गाय) के शरीर से उत्पन्न होने वाला एक पदार्थ है। वस्तुत: यह गाय का 'पित्त' है। जैसे मानव तथा अन्य जीवों में चर्बी, हड्डी, मांस, रक्त आदि उनकी शरीर रचना के आधार हैं, वैसे, ही 'पित्त' भी एक विशेष पदार्थ (शरीर का अङ्ग) है। 'गोरोचन' नाम का यह पदार्थ, जो गौ का 'पित्त' माना जाता है, गाय के सिर में होता है। यह पीले रङ्ग का एक टुकड़ा जैसा (गोल, चपटा, लम्बा, तिकौना, चौकोर—किसी भी आकृति में) दीखता है, और मरी हुई गाय को चीरने पर उसके मस्तक से निकलता है। तत्काल मस्तक चीरे जाने पर यह मुलायम (पनीर या मोम की तरह) होता है, बाद में सूखकर—कड़ी पपड़ी या कङ्कड़ जैसा, सूखी सरेस जैसा हो जाता है।

शरीर-धारियों से प्राप्त कुछ वस्तुएं बहुत पवित्र और उपयोगी होती हैं, इस कारण वे मूल्यवान् वस्तुओं की श्रेणी में गिनी जाती हैं। हाथी-दाँत, मृगचर्म, मकरध्वज (घड़ियाल की नाभि) कस्तूरी आदि ऐसे ही पदार्थ हैं। मीनमुक्ता, गजमुक्ता, शूकरमुक्ता भी ऐसी ही दुर्लभ वस्तुएँ हैं। इतना दुर्लभ तो नहीं, फिर भी कठिनाई से, और कम मात्रा में प्राप्त होने वाला, एक पदार्थ यह भी है गोरोचन !

पर्यायवाची :

अध्यात्म के क्षेत्र (पूजा, पाठ, तन्त्र-मन्त्र) में गोरोचन को बहुत उच्च स्थान प्राप्त है। यह अनेक प्रयोगों में काम आता है। तान्त्रिक ग्रन्थों में इसके कई नाम प्राप्त होते हैं। कमल, जल, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि की भाँति इसे भी अनेक पर्यायवाची शब्दों से प्रयोज्य बताया गया है। इसके कुछ नाम (पर्याय) इस प्रकार हैं :—

● **शिवा**—सदैव कल्याणकारी गोने से यह 'शिव' प्रभाव वाली अर्थात् 'शिवा' मानी गयी है। हालांकि पर्याय शब्द केवल साहित्यिक दृष्टि से ही विवेच्य और प्रयोज्य है, व्यावहारिक क्षेत्र में यह 'गोरोचन' ही कहा जाता है।

● **मङ्गला**—यह जहाँ भी रहे, सदैव मङ्गलमय वातावरण की सृष्टि करता है। वस्तु रूप में इसका सम्बोधन (शिवा मङ्गला आदि) स्त्रीलिंग में होता है, जबकि 'गोरोचन' संज्ञा में यह पुरुष-वाचक है। मङ्गला नाम से प्रसिद्ध यह वस्तु जहाँ भी रहे, मङ्गलमय वातावरण बनाये रहती है। इसके रहते—अशिव, अमङ्गल, अशुभ प्रभाव दूर ही रहेगा।

वन्द्य (वन्दनीया)—गोरोचन का एक नाम यह भी है—'वन्दनीया ! कारण कि भक्त साधकजन पूजा-अर्चना के समय इसे अराध्यदेव को अर्पित करते हैं। तिलक-लेपन बनाने के लिए 'गोरोचन' तान्त्रिक-जगत की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। भगवान श्रीकृष्ण इसे प्रेम से तिलक रूप में धारण करते थे।

● **मेध्या**—शरीर और मेधाशक्ति को (प्रयोग-भेद से) बढ़ाने का गुण रखने के कारण यह 'मेध्या' भी कहलाता है। इस वस्तु को अनेक प्रकार की औषधियों में प्रमुख घटक की मान्यता प्राप्त है।

● **भूत-निवारणी :** 'गोरोचन' जहाँ भी रहेगा—स्थान, व्यक्ति, वस्तु, प्रतिमा में कहीं भी—दैवी शक्ति बनाये रहेगा। इसके रहते वहाँ भूत-प्रेतादि की बाधा भूलकर भी नहीं आती। अनेक प्रकार के दुष्टात्माप्रेत, वायव्य-दोष, अतृप्त और अकाल-मृत्यु के ग्रास बने दीन-दरिद्र प्राणियों की भटकती आत्माएं—ये सब 'गोरोचन' की गन्ध, रङ्ग, स्पर्श और दर्शन से ही भाग जाते हैं।

● **गो-पित्त**—'गोरोचन' शब्द के बाद इसका सर्वाधिक प्रचलित नाम 'गो-पित्त' है। क्योंकि वस्तुतः यह गो-पित्त (गाय का पित्त) ही है। इस प्रकार 'गोरोचन' के अनेक नाम हैं, जो इसके गुणों पर आधारित हैं।

यन्त्र-तन्त्र आदि की साधना में, यन्त्र लेखन में तिलक रचना में षटकर्म और दशकर्म के अनेक प्रयोगों में, तथा कितनी ही औषधियों के निर्माण में—'गोरोचन' का प्रयोग होता है।

यन्त्र-रचना में 'अष्टगन्ध' स्याही की भाँति प्रयोग किया जाता है। अष्टगन्ध कोई एक वस्तु नहीं है, अपितु यह आठ वस्तुओं का मिश्रित है। अष्टगन्ध के आठों घटक जब तक शुद्ध और पूर्ण रूप में न मिलायें जाएं—'अष्टगन्ध' शुद्ध और पूर्ण प्रभावी नहीं होता। 'अष्टगन्ध' की संरचना में घटक-भेद भी है। कुछ आचार्यों

ने जो आठ वस्तुएं प्रयोज्य बतायी हैं, दूसरे आचार्यों ने उनमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया है। पाठकों की ज़ानकारी के लिए—अष्टगन्ध का विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र (परिशिष्ट) वर्णित है।

यह तथ्य सर्व-स्वीकृत है कि जिन यन्त्रों की रचना में 'अष्टगन्ध' का विधान है, वे इसके बिना पूरे नहीं होते। और जिस 'अष्टगन्ध' में 'गोरोचन' प्रयुक्त होगा, उससे निर्मित (लिखित) यन्त्र अवश्य ही प्रभावशील होगा। परन्तु यह सारे लाभ तभी संभव हैं, जब 'गोरोचन' असली हो। आज के 'नकली-युग' में जब नमक ही शुद्ध नहीं मिलता तो फिर 'गोरोचन' और 'कस्तूरी' जैसी अलभ्य वस्तुओं का मूल शुद्ध रूप में प्राप्त होना कठिन है। फिर भी, अनेक संस्थान, विक्रय-केन्द्र और व्यक्ति इन्हें मौलिक रूप में बेचते हैं। जब तक प्रयोज्य वस्तु में शुद्धता, पूर्णता नहीं होगी—वह दोषमुक्त नहीं होगी। उससे वांछित प्रभाव की आशा करना, स्वयं को भुलावे में डालना है।

यहाँ हम साधकों-पाठकों के हितार्थ 'गोरोचन' के कुछ अति प्रभावी और सहज-साध्य तान्त्रिक प्रयोग लिख रहे हैं। यदि आपको कहीं से शुद्ध गोरोचन मिल जाता है, और आप उसका विधिवत प्रयोग करते हैं तो कोई कारण नहीं आपको अपने उददेश्य में सफलता न मिले। श्रद्धा, संयम नियम और धैर्य—यह प्रत्येक साधना में आवश्यक होते हैं। अतः जब भी गोरोचन-तन्त्र का प्रयोग करें, इन बिन्दुओं पर भी ध्यान दें :—

कल्याणकारी प्रयोग :

शुद्ध 'गोरोचन' ले आयें। रविपुष्य का गुरुपुष्य के दिन उसे धूप-दीप और इष्टदेवता के मन्त्र से शोधित करके सोने या चाँदी के ताबीज में भर लें। इस ताबीज को भी पहले धो-पोंछकर, धूप-दीप से शुद्ध कर लेना चाहिए। गोरोचन भरने के बाद उसे सुरक्षित रूप में बन्द कर दें। चाँदी की कसे हुए ढक्कन वाली डिब्बी भी प्रयुक्त हो सकती है। पूजनोपरान्त यह ताबीज गले में, भुजा में, कमर में—कहीं भी धारण कर लें। धारण न करके, यदि घर में कहीं सुरक्षित रख दिया जाय तो भी इसका प्रभाव सक्रिय रहता है। 'गोरोचन' की यह डिब्बी (ताबीज) जहाँ भी रहेगी, वहाँ के सारे दुष्प्रभाव, अमंगल समाप्त हो जाएंगे। मंगलमय वातावरण और शुभ प्रभाव की सृष्टि में यह प्रयोग निश्चित रूप से फलदायी होता है।

ग्रहदोष-निवारक प्रयोग :

भौतिक-विज्ञान ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है कि आकाश में स्थित तारा समूह की प्रकाश-किरणें पृथ्वी के प्राणियों को प्रभावित करती हैं । आकाश में असंख्य तारे हैं । सामूहिक रूप में वे विभिन्न वर्गों में विभक्त हैं । नक्षत्र और राशि ऐसे ही तारा-समूह हैं । 'ग्रह' नामक तारे स्वयं में तो 'तारा' हैं हीं, वे एक बहुत बड़े तारा-समूह का प्रतिनिधित्त्व भी करते हैं । इन ग्रहों की संख्या नौ है, जिनमें सात दृश्य हैं और दो अदृश्य हैं—छाया-ग्रह ! भौतिक-विज्ञान में—खगोल-शास्त्र भी नौ ग्रहों की उपस्थिति और उनका विकिरणीय-प्रभाव स्वीकार करता है । भारतीय-संस्कृति और ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, आकाश-स्थित नवग्रहों के नाम इस प्रकार हैं :—

1. सूर्य, 2. चन्द्रमा, 3. मङ्गल, 4. बुध 5. गुरु (बृहस्पति), 6. शुक्र, 7. शनिश्चर (शनि), 8. राहु, 9. केतु ।

जिस समय कोई प्राणी जन्म लेता है, ग्रहों की तत्काल स्थिति उनकी पारस्परिक और पृथ्वी से दूरी, समय और प्रकाश का माप—यह सब उनके भावी जीवन, शरीर, स्वास्थ्य, रुचि, प्रवृत्ति, स्वभाव और धारणा-शक्ति को प्रभावित करते हैं । यद्यपि यह नियम समस्त प्राणिजगत पर लागू होता है, परन्तु हम यहाँ अकेले मानव के सन्दर्भ में ही लिख रहे हैं, क्योंकि मानव-सृष्टि का सबसे चैतन्य, बुद्धिमान और विवेकवान प्राणी होता है ।

प्रत्येक बालक अपने भावी जीवन में, अपने जन्मकाल की ग्रहीय-स्थिति से अवश्य ही परिचालित प्रभावित रहता है । जन्म-काल की स्थितियों में लग्न-वार, तिथि, मास, पक्ष, अयन, समय और नवग्रहों की उपस्थिति, दशा, दूरी, संयुति आदि का विचार किया जाता है । सर्वाधिक प्रभाव लग्न का पड़ता है । इसके बाद नवग्रहों की प्रभावशीलता व्यक्ति को नियंत्रित करती है । बल्कि ग्रहीय-स्थिति से लग्न का प्रभाव भी परविर्तित हो जाता है । कोई भी जन्माङ्क-चक्र (कुण्डली) देखें, कहीं विघ्नकारी ग्रह अवश्य ही दीख पड़ेगा । वास्तविकता तो यह है कि सैकड़ों में कहीं एक कुण्डली ही सशक्त होती है, वह भी सर्वाङ्ग नहीं । कम-से-कम 10-5 प्रतिशत कोई दोष उसमें भी होगा । फिर भी कुण्डली के 12 भावों में स्थित नवग्रहों की उपस्थिति का अनुपात (शक्ति की दृष्टि से) यदि सबल है, तो वह जातक अपेक्षाकृत सुखी होगा ।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति नवग्रहों के प्रभाव से परिचालित, पोषित और पीड़ित होता रहता है। यद्यपि शनि, मङ्गल, सूर्य, राहु और केतु—ये ग्रह क्रूर, कठोर, कष्टप्रद माने जाते हैं, शेष को शुभ और सौम्य (सोम, बुध, गुरु, शुक्र) कहा गया है। परन्तु यथार्थ की कसौटी पर परखें तो पता चलता है कि समय और स्थिति के आधार पर प्रत्येक ग्रह (पृथक्-पृथक् सभी नवग्रह) शुभ और अशुभ दोनों तरह के फल देता है स्थान-भेद और संग-भेद से कोई ग्रह दुखद, मारक अथवा पोषक और सुखद हो जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक ग्रह शुभ-स्थिति में है, परन्तु दूसरे का सम्पर्क, स्पर्श, छाया अथवा दृष्टिपात उसके शुभ प्रभाव को समाप्त कर देता है ऐसी स्थिति में जातक अपने शुभ-ग्रह के प्रभाव से वंचित हो जाता है। मैंने ऐसे कई जन्माङ्क-चक्र देखे हैं, जिनमें बिडम्बनात्मक स्थिति थी।

यह एक अनुभूत और बहुविख्यात प्रयोग है कि गोरोचन में नवग्रहों के दोष को निवारण करने की क्षमता निहित होती है। इसके लिए साधक को चाहिए कि वह 'रविपुष्य-योग' के दिन गोरोचन को गंगाजल से स्नान (स्पर्श मात्र) कराकर, धूप-दीप द्वारा शोधन करे, तत्पश्चात उसका एक टुकड़ा चाँदी के नये शोधित कवच मे भरकर सुरक्षित बन्द करले, और दूसरा टुकड़ा भी किसी डिब्बी में सुरक्षित रखे, उसे नित्य स्नानोपरान्त घिसकर चन्दन की भाँति माथे पर तिलक (टीका-बिन्दी) लगाता रहे। कवच को किसी भी रूप में धारण कर ले। इस प्रकार गोरोचन का कवच और तिलक (टीका-बिन्दी) धारण करने वाल व्यक्ति नवग्रहों के कोप से मुक्त हो जाता है।

प्रेतबाधा-निवारण :

गुरुपुष्य-योग के दिन भोजपत्र पर, स्नान-पूजा से निवृत्त होकर गोरोचन के लेप से, अनार की कलम द्वारा 'ह्रीं' लिखें, फिर से धूप-दीप देकर अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुए, अथवा शिवजी या दुर्गाजी की स्तुति करते हुए भोजपत्र का टुकड़ा लाल वस्त्र में लपेटकर या चाँदी अथवा ताँबे के ताबीज में भरकर रोगी को पहिना दें। यह प्रयोग समस्त प्रकार के भूतावेश, प्रेत-पीड़ा, वायव्य-दोष आदि को दूर कर देता है।

धन-समृद्धिकारी प्रयोग :

रुपया-पैसा, धन-दौलत , सोना-चाँदी और अन्न-भण्डार यही सब समृद्धि

के आधार हैं। इनके अभाव में जीवन, विपन्न, दरिद्रता-ग्रस्त और दुर्भाग्यपूर्ण हो जाता है। भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, सम्पन्नता, सम्मान और विचार-शक्ति—यह सब क्षीण होने लगते हैं, फलतः ऐसा व्यक्ति, कुण्ठा, भग्नाशा, नैराश्य और अवसाद की पीड़ा सहते-सहते अन्ततः विक्षिप्त हो जाता है। इसी मनोदशा में कुछ लोग अपराध मार्ग पर चल पड़ते हैं। धनाभाव से पीड़ित होने के कारण वे समाज-द्रोही हो जाते हैं और अनैतिक कार्यों द्वारा धनार्जन करके अपने अभावों की पूर्त्ति और प्रतिशोध-भावना को शान्त करते हैं। आशय यह है कि धन (रुपया-पैसा) मानव-जीवन की पूर्त्ति में सबसे बड़ा अवलम्ब है। परन्तु वास्तविकता यह है कि अधिकांश परिवार (सौ में से 70-80 तक) धानाभाव से पीड़ित रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए 'गोरोचन' बहुत लाभकारी होता है। गुरुपुष्य के दिन इसे पूजनोपरान्त गल्ला, बक्स, तिजौरी, गोलक में रख दें। यह प्रयोग निश्चितरूपेण धन-बर्द्धक होता है।

वशीकरण प्रयोग :

रविपुष्य के दिन 'गोरोचन' का तिलक माथे पर लगाना प्रारम्भ करें। फिर नित्य स्नानोपरान्त लगाते रहें। इसके रहते व्यक्ति जहाँ भी जाये, इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है।

सौन्दर्य-प्रसाधन के रूप में :

सौन्दर्य-प्रेम सभी में होता है। पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग तक इसके प्रति मोहासक्त रहते हैं। मानव सर्वाधिक तर्कशील होता है, अतः वह नाना प्रकार के प्रसाधन और अलंकरण अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए प्रयोग में लाता है।

हमारे देश में उबटन का प्रयोग—सौन्दर्य-वृद्धि और वर्ण-शोधन के लिए प्राचीन-काल से होता आ रहा है। चिरौंजी, बादाम, सरसों, हल्दी. चन्दन, केसर, जौ का आटा आदि पदार्थ उबटन के रूप में सौन्दर्य-बर्द्धक माने जाते हैं। इधर, पश्चिमी-सभ्यता ने हम भारतीयों की अस्मिता कीलित कर रखी है। फलतः हमने अपने 'स्व' को भूलकर—परिधान, प्रसाधन, भोजन, चिन्तन, क्रिया-कलाप सब में भारतीयता की उपेक्षा करके पश्चिमी-सभ्यता, संस्कृति-प्रसाधन और परिधान ग्रहण कर लिया है, और इस मानसिकता में स्वयं को गौरव-गर्वित अनुभव करते हैं।

आज तरह-तरह के लोशन, पाउडर, क्रीम आदि प्रचलित हैं, जो रंगशाला के अभिनेता जैसा कृत्रिम रूप-विन्यास देकर अन्ततः हमारी त्वचा को, हमारी अर्थ-व्यवस्था को और अन्त में हमारी शान्ति और बौद्धिक-शक्ति को क्षीण कर देते हैं। फिर भी हम हैं कि नित्य नये उत्पादन को खोजने में बाजार छानते रहते हैं, और यदि संयोग से कोई 'इम्पोर्टेड आइटम' मिल गया तो अभूतपूर्व सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। परन्तु 'गोरोचन' के सामने संसार के सभी सौन्दर्य-प्रसाधन व्यर्थ हैं। 'गोरोचन' का लेप लगाने से सौन्दर्य में चमत्कारी वृद्धि हो जाती है। इसे अन्य घटकों के साथ मिलाकर उबटन के रूप में अथवा घिसकर लेप के रूप में लगाना चाहिए।

अपस्मार-नाशक :

गुलाबजल में दो माशा गोरोचन घिसकर तीन दिन तक तीन-तीन बार पिलाने से (यह प्रयोग किसी रविवार या मंगलवार से प्रारम्भ करें) अपस्मार (मिर्गी), हिस्टीरिया, मूर्च्छा, चक्कर आदि दोष मिट जाते हैं।

कृशता-निवारण :

चार-बादाम और चार जौ-भर गोरोचन एक साथ पीसकर या दूध में घिसकर 21 दिनों तक सेवन करें, साथ में दूध भी पियें। यह प्रयोग शरीर की कृशता दूर करके उसे स्वस्थ और मांसल बना देता है। प्रयोग मंगलवार से प्रारम्भ करना चाहिए।

8 गुञ्जा

सामान्य परिचय :

'गुञ्जा' एक वनलता की फली का बीज है। इसे गुञ्जा, चिरमिटी, घुँघुची, रत्ती आदि नामों से जाना जाता है। इसकी जड़ दीर्घजीवी होती है। फाल्गुन के बाद यह लता मुरझाने लगती है और गर्मी में सूखकर नष्ट हो जाती है। परन्तु भूमि के नीचे इसकी जड़ें हरी रहती हैं। प्रथम वर्षा में धरती भीगते ही उस जड़ में अंकुर निकल आते हैं। इस तरह आषाढ़ में वह लता पुन: उग आती हैं और क्रमश: बढ़ती हुई, समीप के पेड़-पौधों पर चढ़कर ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

'गुञ्जा' लता की पत्तियाँ इमली की पत्ती से साम्य रखती हैं। मटर अथवा सेम के जैसे फूल इसमें आते हैं, जो अपने गुलाबीपन के कारण प्रिय दीखते हैं। प्राय: क्वार (आश्विन) में इस लता में फूल आते हैं और अगहन में इसकी फलियाँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। फलियों की आकृति सेम की फली से अधिक शोभन होती है। फाल्गुन में ये फलियाँ पककर चटक जाती हैं और उनके भीतर लगे हुए (कभी-कभी टूटकर नीचे गिरे हुए) घुँघुची के दाने स्पष्ट दीख पड़ते हैं।
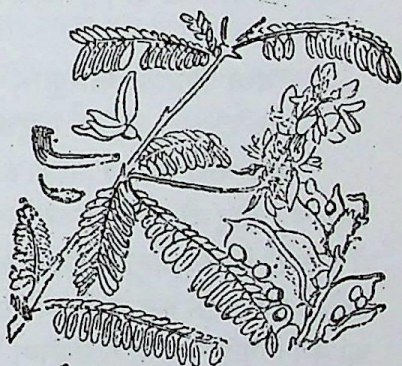
गुंजा (Abrus Precatorius)

घुँघुची की दो जातियाँ हैं—लाल और सफेद। लाल घुँघुची की उत्पत्ति अधिक होती है, सफेद वाली जाति की लता यदाकदा ही मिलती है। तान्त्रिक प्रभाव की दृष्टि से ये दोनों ही जातियाँ प्रयोजनीय हैं, परन्तु श्वेत-गुञ्जा (सफ़ेद घुँघुची) को कुछ विशेष मान्यता प्राप्त है। लेकिन उसके अभाव में रक्त गुञ्जा (लाल घुँघुची) से भी अनेक प्रकार के प्रयोग किये जा सकते हैं। उत्तमत्ता और शक्ति

की दृष्टि से श्वेत-गुञ्जा को विशेष महत्त्व दिया जाता है, परन्तु रक्त-गुञ्जा भी लगभग वैसी ही होती है और श्वेत-गुञ्जा की रिक्तता की पूर्त्ति करने में पर्याप्त सफल रहती है।

रत्ती अथवा घुँघुची माप तौल की एक बहुत ही छोटी इकाई है। जौहरी और सुनार लोग सोना-चाँदी तथा रत्नादि की तौल में इसका प्रयोग बाँट के रूप में करते हैं। कैरेट और मिली-ग्राम तो अभी कल से चालू हुए हैं, परन्तु भारतीय-इतिहास में रत्ती का प्रयोग तौल के क्षेत्र में हजारों वर्षों से चला आ रहा है।

हिन्दू परिवारों में विवाह के समय वर को कङ्गन पहिनाया जाता है, उसमें यह घुँघुची (लाल रत्ती) पिरोयी रहती है। वस्तुतः यह एक तान्त्रिक प्रयोग है, जो वर की सुरक्षा-समृद्धि और सुखद दाम्पत्त्य के लिए सम्पन्न किया जाता है।

इसे मनका के रूप में पिरोकर मालाएं बनायी जाती हैं। आदिवासियों का यह प्रिय आभूषण है। वे हीरे-मोती की कद्र नहीं जानते, अतः गुञ्जा उनके लिए सर्वश्रेष्ठ रत्न है। उनकी इस मनोवृत्ति को नीतिकारों ने इस प्रकार वर्णित किया है :—

न वेत्ति यो यस्य गृणंप्रकर्ष,
सतं यदा निन्दति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भ लब्धा,
मुक्ता परित्यज्य विभर्ति गुञ्जाम॥

कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है कि भगवान श्रीकृष्ण भी गुञ्जामाला धारण करते थे। अस्तु जो भी हो, गुञ्जा का उपयोग आभूषण (माला-कङ्गन) के रूप में होता ही है, भार तौलने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति रहती है और इन सबसे अधिक महत्त्व इसे तन्त्र के क्षेत्र में प्राप्त है। गुञ्जा के बहुविधि तान्त्रिक प्रयोगों का वर्णन मिभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

जैसा प्रारंभ में लिखा जा चुका है, गुञ्जा की दो जातियाँ होती हैं—लाल और सफेद! एक तीसरी जाति का उल्लेख भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है—काली गुञ्जा! किन्तु यह दुर्लभ है। अपवाद-स्वरूप ही कहीं दीख पड़ती है। तन्त्र-साधना में उसे बहुत ही प्रभावशाली, उपयोगी, मूल्यवान् और दुर्लभ कहा गया है। किन्तु उसके स्थान पर सफेद और सफेद न मिलने पर लाल गुञ्जा के प्रयोगों का निर्देश मिलता है। यहाँ हम पाठकों के लिए संक्षेप में घुँघुची की कुछ तान्त्रिक विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं।

औषधीय-क्षेत्र में भी घुँघुची को स्थान प्राप्त है। यह घुँघुची दाना स्वयं में अमृत और विष दोनों का प्रभाव रखती है। इसी की जड़ को (अनेक विद्वान) मुलहठी कहते हैं। मुलहठी (मुरैठी) एक मीठी जड़ है, जो खाँसी, शक्ति-क्षय, कफ-विकार आदि के निवारण हेतु प्रयुक्त होती है। मुलहठी के रस से एक यूनानी (हकीमी) दवा बनायी जाती है, जिसे 'रब्बेसूस' कहते हैं। यह खाँसी की श्रेष्ठ औषधि है। किन्तु यहाँ हमारा प्रतिपाद्य-विषय आयुर्वेद नहीं वरन् तन्त्र है, अतः गुञ्जा सम्बन्धी कुछ तान्त्रिक प्रयोगों का वर्णन किया जा रहा है।

गुञ्जा-मूल :

जिसे ऊपर मुरैठी कहा गया है (भले ही वह मुरैठी किसी दूसरी लता की जड़ हो, यहाँ हम घुँघुची की जड़ का वर्णन कर रहे हैं) उसे तान्त्रिक-विधि से प्राप्त करें। अर्थात् एक दिन पूर्व सन्ध्या को लता के पास जाकर उसे विधिवत् निमंत्रण दे आयें। (निमंत्रण विधि के लिए देखें—'वनस्पति-तन्त्र' अध्याय 2 के प्रारम्भ में बदरी बाँदाल) फिर दूसरे दिन प्रातः जाकर उसे (गुञ्जा की जड़) ले आयें।

मूल प्राप्ति का मुहूर्त्त :

कोई भी कार्य हो, उसकी सफलता बहुत कुछ उसको प्रारम्भ करने के मुहूर्त्त पर निर्भर करती है। कार्य-भेद, वस्तु-भेद और प्रयोग-भेद से, मुहूर्त्त का विचार अलग-अलग करना पड़ता है। गुञ्जा-मूल प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित में से कोई भी एक मुहूर्त्त ले सकते हैं :—

- रविपुष्य योग
- शुक्र-रोहिणी योग (यदि ग्रहण पड़ रहा हो तो अत्युत्तम)
- कृष्ण अष्टमी—हस्त योग
- कृष्ण चतुर्दशी—स्वाति योग
- कृष्ण चतुर्दशी—शतभिषा योग
- अनेक विद्वान गुरुपुष्य योग को भी मान्यता देते हैं।

● उपर्युक्त विवरण के अनुसार यदि निकट भविष्य में कोई अनुकूल मुहूर्त्त नहीं मिल रहा और साधक को तात्कालिक आवश्यकता है, तो वह स्थानीय पुरोहित से किसी शुभ-मुहूर्त्त की जानकारी (सिद्धियोग, सर्वार्थ-सिद्धियोग, अमृतयोग आदि) प्राप्त कर लें, फिर तद्नुसार निमंत्रण के उपरान्त दूसरे दिन प्रातः जाकर वहीं जड़ी ले आयें।

की दृष्टि से श्वेत-गुञ्जा को विशेष महत्त्व दिया जाता है, परन्तु रक्त-गुञ्जा भी लगभग वैसी ही होती है और श्वेत-गुञ्जा की रिक्तता की पूर्ति करने में पर्याप्त सफल रहती है ।

रत्ती अथवा घुँघुची माप तौल की एक बहुत ही छोटी इकाई है । जौहरी और सुनार लोग सोना-चाँदी तथा रत्नादि की तौल में इसका प्रयोग बाँट के रूप में करते हैं । कैरेट और मिली-ग्राम तो अभी कल से चालू हुए हैं, परन्तु भारतीय-इतिहास में रत्ती का प्रयोग तौल के क्षेत्र में हजारों वर्षों से चला आ रहा है ।

हिन्दू परिवारों में विवाह के समय वर को कङ्गन पहिनाया जाता है, उसमें यह घुँघुची (लाल रत्ती) पिरोयी रहती है । वस्तुतः यह एक तान्त्रिक प्रयोग है, जो वर की सुरक्षा-समृद्धि और सुखद दाम्पत्य के लिए सम्पन्न किया जाता है ।

इसे मनका के रूप में पिरोकर मालांएं बनायी जाती हैं । आदिवासियों का यह प्रिय आभूषण है । वे हीरे-मोती की कद्र नहीं जानते, अतः गुञ्जा उनके लिए सर्वश्रेष्ठ रत्न है । उनकी इस मनोवृत्ति को नीतिकारों ने इस प्रकार वर्णित किया है :—

न वेत्ति यो यस्य गृणंप्रकर्ष,
सतं यदा निन्दति नाऽत्र चित्रम् ।
यथा किराती करिकुम्भ लब्धा,
मुक्ता परित्यज्य विभर्ति गुञ्जाम ॥

कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है कि भगवान श्रीकृष्ण भी गुञ्जामाला धारण करते थे । अस्तु जो भी हो, गुञ्जा का उपयोग आभूषण (माला-कङ्गन) के रूप में होता ही है, भार तौलने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति रहती है और इन सबसे अधिक महत्त्व इसे तन्त्र के क्षेत्र में प्राप्त है । गुञ्जा के बहुविधि तान्त्रिक प्रयोगों का वर्णन मिभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होता है ।

जैसा प्रारंभ में लिखा जा चुका है, गुञ्जा की दो जातियाँ होती हैं—लाल और सफेद ! एक तीसरी जाति का उल्लेख भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है—काली गुञ्जा ! किन्तु यह दुर्लभ है । अपवाद-स्वरूप ही कहीं दीख पड़ती है । तन्त्र-साधना में उसे बहुत ही प्रभावशाली, उपयोगी, मूल्यवान् और दुर्लभ कहा गया है । किन्तु उसके स्थान पर सफेद और सफेद न मिलने पर लाल गुञ्जा के प्रयोगों का निर्देश मिलता है । यहाँ हम पाठकों के लिए संक्षेप में घुँघुची की कुछ तान्त्रिक विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं ।

औषधीय-क्षेत्र में भी घुँघुची को स्थान प्राप्त है। यह घुँघुची दाना स्वयं में अमृत और विष दोनों का प्रभाव रखती है। इसी की जड़ को (अनेक विद्वान) मुलहठी कहते हैं। मुलहठी (मुरैठी) एक मीठी जड़ है, जो खाँसी, शक्ति-क्षय, कफ-विकार आदि के निवारण हेतु प्रयुक्त होती है। मुलहठी के रस से एक यूनानी (हकीमी) दवा बनायी जाती है, जिसे 'रब्बेसूस' कहते हैं। यह खाँसी की श्रेष्ठ औषधि है। किन्तु यहाँ हमारा प्रतिपाद्य-विषय आयुर्वेद नहीं वरन् तन्त्र है, अतः गुञ्जा सम्बन्धी कुछ तान्त्रिक प्रयोगों का वर्णन किया जा रहा है।

गुञ्जा-मूल :

जिसे ऊपर मुरैठी कहा गया है (भले ही वह मुरैठी किसी दूसरी लता की जड़ हो, यहाँ हम घुँघुची की जड़ का वर्णन कर रहे हैं) उसे तान्त्रिक-विधि से प्राप्त करें। अर्थात् एक दिन पूर्व सन्ध्या को लता के पास जाकर उसे विधिवत् निमंत्रण दे आयें। (निमंत्रण विधि के लिए देखें—'वनस्पति-तन्त्र' अध्याय 2 के प्रारम्भ में बदरी बाँदाल) फिर दूसरे दिन प्रातः जाकर उसे (गुञ्जा की जड़) ले आयें।

मूल प्राप्ति का मुहूर्त्त :

कोई भी कार्य हो, उसकी सफलता बहुत कुछ उसको प्रारम्भ करने के मुहूर्त्त पर निर्भर करती है। कार्य-भेद, वस्तु-भेद और प्रयोग-भेद से, मुहूर्त्त का विचार अलग-अलग करना पड़ता है। गुञ्जा-मूल प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित में से कोई भी एक मुहूर्त्त ले सकते हैं :—

- रविपुष्य योग
- शुक्र-रोहिणी योग (यदि ग्रहण पड़ रहा हो तो अत्युत्तम)
- कृष्ण अष्टमी—हस्त योग
- कृष्ण चतुर्दशी—स्वाति योग
- कृष्ण चतुर्दशी—शतभिषा योग
- अनेक विद्वान गुरुपुष्य योग को भी मान्यता देते हैं।

● उपर्युक्त विवरण के अनुसार यदि निकट भविष्य में कोई अनुकूल मुहूर्त्त नहीं मिल रहा और साधक को तात्कालिक आवश्यकता है, तो वह स्थानीय पुरोहित से किसी शुभ-मुहूर्त्त की जानकारी (सिद्धियोग, सर्वार्थ-सिद्धियोग, अमृतयोग आदि) प्राप्त कर लें, फिर तदनुसार निमंत्रण के उपरान्त दूसरे दिन प्रातः जाकर वहीं जड़ी ले आयें।

गुञ्जा के तान्त्रिक-प्रयोग :

गुञ्जा अर्थात् घुँघुची के दाने तथा इसकी जड़—दोनों ही तान्त्रिक-साधना में प्रयुक्त होते हैं। नीचे कुछ प्रमुख व्यावहारिक विषयों पर इसकी उपयोगिता लिखी जा रही है। परन्तु ध्यान रहे कि ये प्रयोग तभी सफल होते हैं, जब प्रयोक्ता ने वांछित वस्तुओं को शुभ-मुहूर्त्त में तन्त्र-साधना में वर्णित विधि के अनुसार प्राप्त किया हो।

कलहकारी (विद्वेषण) प्रयोग :

रक्त-गुञ्जा (लाल घुँघुची) के दाने रवि या मङ्गलवार के दिन यह कामना करते हुए कि 'हे वनस्पतिदेव ! आप मेरे कार्य की सिद्धि के लिए अमुक घर-परिवार में कलह (विद्वेष) उत्पन्न कर दो।' किसी घर में फेंक दिएं जाएं तो उस परिवार में कलह उत्पन्न हो जाता है। यह तान्त्रिक प्रयोग प्राय: किसी दुष्ट, सबल, उत्पाती और पर-पीड़क परिवार के पतन हेतु किया जाता है। सात्त्विक विचारों वाले साधक इसे नहीं करते।

विष-निवारक प्रयोग :

● यदि कोई व्यक्ति विष के प्रभाव से अचेत हो रहा हो तो उसे गुञ्जा की जड़ पानी में धोकर, वही पानी पिलायें। ध्यान रहे कि प्राप्त होने के समय जड़ को भली-भाँति धो-सुखा लिया जाता है, ताकि उसमें धूल-मिट्टी न रहे। गुञ्जा-जल-विष-निवारक है।

● पानी में घुंघुची को चन्दन की भाँति घिसकर रोगी को पिलाने से विष उतर जाता है।

सम्मानदायी प्रयोग :

शुद्ध जल में (गङ्गाजल या अन्य किसी तीर्थ का जल, या फिर कुएं का ही सादा साफ जल) गुञ्जा मूल को चन्दन की भाँति घिसें। उत्तम होगा—किसी कुमारी कन्या या ब्राह्मण के हाथों घिसवा लें। यह लेप माथे पर चन्दन की भाँति लगायें, लेप करें। ऐसा व्यक्ति (चन्दन-चर्चित मस्तक वाला) जहाँ भी जाता है—सभा, समाज, समारोह आदि में, उसे विशेष सम्मान प्राप्त होता है।

पुत्रदाता प्रयोग :

शुभ-नक्षत्र योग में, गुञ्जा-मूल को ताबीज में भरकर कमर में धारण करने वाली स्त्री, यदि स्वस्थ है, तो पति-सम्पर्क करने पर पुत्र-लाभ प्राप्त करती है।

शत्रु-दमन प्रयोग :

गुञ्जा-मूल को किसी स्त्री के मासिक-स्राव (रजःस्वला स्थिति के रक्त) में घिसकर, अंजन की भाँति आँखों में लगाकर शत्रु के सामने जाने पर—वह देखते ही भाग जायेगा। इस तन्त्र का यह प्रभाव है कि प्रयोक्ता की आँखों में एक प्रकार की अदम्य भयावहता और ज्वलन्तता आ जाती है। उसे देखकर शत्रु और उसके साथ सब भयभीत हो जाते हैं। अंजन का प्रयोक्ता व्यक्ति उन्हें बहुत ही विकराल और प्रचण्ड-शक्ति-सम्पन्न प्रतीत होता है। फलतः वे सब स्वयं को असहाय-निर्बल मानकर पलायन कर जाते हैं।

अलौकिक शक्ति-दर्शन :

देवी-देवता और भूत-प्रेतादि अलौकिक, पारभौतिक शक्तियाँ हैं। जड़-विज्ञान इनके अस्तित्त्व का उपहास करता है, परन्तु धर्म, संस्कृति, आध्ययत्म और मनोविज्ञा के ज्ञाता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि संसार में कुछ गुप्त, अलौकिक, रहस्यमयी-शक्तियाँ अवश्य हैं, जो यदाकदा प्रकट होकर, अपने अस्तित्त्व का परिचय देते हुए, मानव-समाज को, बुद्धिवादियों को दिग्भ्रमित करती रहती है। अस्तु, प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों में उल्लेख है कि यदि रविपुष्य योग में अथवा मंगलवार के दिन गुंजामूल को शुद्ध मधु (शहद) में घिसकर वह लेप आँखों में अंजन की भाँति लगायें, तो गुप्त शक्तियों के दर्शन होते हैं। ये शक्तियाँ सात्त्विक कम, तामसिक अधिक होती हैं, अतः दुर्बल ह्रदय और भीरु-प्रकृति वाले व्यक्तियों के लिए यह प्रयोग वर्जित है।

ज्ञान-बर्द्धक प्रयोग :

अजा-दुग्ध (बकरी का दूध) में गुंजामूल को घिसकर हथेलियों पर रगड़ें, लेप करें। कुछ समय तक यह प्रयोग करते रहने से प्रयोक्ता व्यक्ति की बुद्धि तीव्र हो जाती है और वह जटिल-दुरूह विषयों को भी सरलता से समझ लेता है। मेधा, चिन्तन-शक्ति, धारणा और विवेक तथा स्मृति की प्रखरता के लिए यह प्रयोग उत्तम होता है।

पुन्सत्त्व-बर्द्धक प्रयोग :

भैंस का घी लेकर उसमें गुञ्जा को चन्दन की भाँति घिसकर लेप तैयार करें। इस लेप की मालिश करने से काम-शक्ति बढ़ती है, मन में उत्तेजना आती है और

वीर्य-स्तम्भन होता है। ध्यान रहे कि यह लेप बहुत धीरे-धीरे समूची पुरुषेन्द्रिय पर (ऊपर से नीचे तक) मलना चाहिए।

गुप्त-धन दर्शन :

अङ्कोल के तेल में (अङ्कोल को ग्राम्य-भाषा में 'अँकोहर' कहते हैं, इसके बीजों से तेल निकाला जाता है) गुंजामूल को घिसकर आँखों में काजल की भाँति लगायें। यह प्रयोग रवि या मंगलवार को अथवा 'रविपुष्य' जैसे किसी शुभ योग में ही करना चाहिए। यह अंजन दिव्य दृष्टिदायक होता है और इसके प्रयोग से व्यक्ति को पृथ्वी में गढ़ा हुआ आसपास का धन दिखायी देता है।

मृत-चैतन्य प्रयोग :

गुलाब के रस (फूलों को पीसकर रस निकालें) में गुंजामूल को घिसकर लेप तैयार करें। यह लेप किसी तत्काल मृत व्यक्ति के शव पर (नाड़ी-संस्थान पर) लेप कर दिया जाय तो वह सक्रिय हो उठता है। संभवतः कुछ देर के लिए उसकी चेतना लौट आती है।

परन्तु मेरे विचार से यह प्रयोग वांछित नहीं है। किसी मृत-व्यक्ति को 1-2 घण्टे के लिएं सचेत कर लेने से क्या लाभ ? 'जनमत-मरत दुसह दुख होई' के अनुसार यदि प्रथम बार वह व्यक्ति दारुणा भोगकर मरा है तो उसे 2 घण्टे के लिए जिलाकर, बाद में फिर वही यन्त्रणा सहने के लिए विवश करना मानवीय दृष्टि से उचित नहीं है। यों प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए यह प्रयोग यहाँ लिख दिया गया है, परन्तु मात्र चमत्कार के लिए—ऐसे कार्यों में शक्ति का अपव्यय ही होता है।

साधना वही सराहनीय और शाश्वत होती है, जो पर-हितकारी, लोक-रंजक और मानवता की रक्षा में समर्थ हो। केवल कौतूहल और क्षुद्र मनोरंजन के लिए तन्त्र जैसे विषय को माध्यम बनाना—तन्त्र-शास्त्र और इसके प्रणेताओं का उपहास ही माना जायेगा।

सुरक्षाकारी प्रयोग :

सिंहनी (बाघिन) के दूध में गुंजा की जड़ को चन्दन की भाँति रगड़कर पर्याप्त मात्रा में लेप तैयार करें। फिर एकान्त में नग्न होकर सारे शरीर में वह लेप लगालें। सूख जाने पर कपड़े पहिन लें और विरोधी के सामने जायें। वह चाहे मौखिक वाद-विवाद हो या मार-पीट की स्थिति हो या सशस्त्र सेना में युद्ध का अवसर हो अथवा दस्यु-दल के बीच घिर जाने की स्थिति हो—हर हालत में साधक

की सुरक्षा रहेगी । इस तन्त्र-प्रयोग के प्रभाव से शत्रु अथवा उसका कोई अस्त्र-शस्त्र साधक का अनिष्ट नहीं कर पाता ।

आतंककारी प्रयोग :

यदि कोई साधक काले तिल कें तेल में गुंजामूल को घिसकर वह लेप सारे शरीर में मल ले तो उसके प्रभाव से—वह (साधक) बहुत ही सबल, अजेय और भयानक प्रतीत होगा । फलस्वरूप शत्रुदल चुपचाप भाग जायेगा ।

मारण-प्रयोग :

गुंजा और गोरोचन को एक साथ घिसकर (पीसकर) उस लेप से मृत्यु-यन्त्र की रचना करें । मृत्यु-यन्त्र में शत्रु का नाम लिख दें । बाद में उसे कहीं धरती में गाढ़ दें । इस क्रिया से शत्रु की मृत्यु हो जायेगी । लोकहित तथा मानवता की दृष्टि से, मृत्यु-यन्त्र का विवरण देना उचित नहीं है, अत: उसकी रूपरेखा नहीं दी जा रही । कारण कि आज के क्षुद्र, स्वार्थी और अपराध-प्रवण युग में ऐसे प्रयोग शेर के हाथ में तलवार दे देने के समान होंगे ।

कुष्ठ-निवारक प्रयोग :

गुंजामूल को अलसी के तेल में घिसकर लगाने से कुष्ठ के घाव ठीक हो जाते हैं ।

अन्धत्त्व-निवारक प्रयोग :

गुंजामूल को गंगाजल में घिसकर आँखों में लगाने से आँसू बहुंत आते हैं । घी में जड़ को घिसकर आँखों में लगाने से अनधत्त्व में लाभ होता है । परन्तु ये सभी प्रयोग सार्वजनिक-हिंत में और शुभ-मुहूर्त्त में ही करने चाहिए ।

9 सियारसिंगी

सामान्य परिचय :

पशु-तन्त्र के अन्तर्गत सियारसिंगी (श्रृंगालश्रङ्ग, सियारसिङ्गी, गीदड़सिङ्गी, जम्बुकश्रृङ्ग, जम्बुकी) को बहुत महत्त्व प्राप्त है। इसके विषय में अनेक रोचक तथ्य (भले ही दन्त-कथा हों) प्रचलित हैं। परन्तु यह सत्य है कि सियारसिङ्गी का अस्तित्व है अवश्य, और वह तान्त्रिक चमत्कारों से आपूरित भी होती है। परन्तु मुख्य प्रश्न यह है कि क्या बाजार में मिलने वाली सियारसिङ्गी असली होती है? इसकी उत्पत्ति और उपलब्धि के विषय में बहु-प्रचलित धारणा यह है कि—

नर-सियार (श्रृगाल-जम्बुक) के माथे पर एक सींग होता है, उसी को 'सियारसिंगी' कहते हैं।

जङ्गल में बहुत से सियार पाये जाते हैं। यों, अब वन-विनाश के कारण वन्य जीवों की संख्या भी लुप्तप्राय: होने लगती है, फिर भी जहाँ जङ्गल है, आज भी सियार पाये जाते हैं। भारतीय जङ्गलों में सियार, लोमड़ी, भेड़िया, वन-बिलाव, वन-बडैल (जंगली सुअर), हिरन, साही आदि पशुओं की अधिकता है। सामान्य गाँवों में भी मामूली वन्य झाड़ियों, नदी-तट की खोहों, और घने बागों के क्षेत्र में सियार, लोमड़ी, खरगोश आसानी से देखे जा सकते हैं।

'सियार' एक बहुत ही काइंया (धूर्त्त, चालाक और स्वार्थी) जीव होता है। कुत्ते से मिलता-जुलता यह जानवर मांसाहारी तो है ही, किसानों की फसल पर भी बराबर दाँत लगाये रहता है। मूँगफली, शकरकन्द, आलू, गन्ना, ककड़ी, तरबीज, खरबूज आदि की फसलें यह चौपट कर देता है। अकेला सियार बहुत कम चलता है। यह 2-4 या अधिक के समूह में रहता है। इसकी आवाज बड़ी, तेज मीठी, किलकारी भरी होती है— 'हुआ-हुआ, हुआ-हुआ !' गाँवों के आसपास शाम के झुरपुटे में, जब ये समूहबद्ध होकर खेतों में निकलते हैं, उस समय इनका कोलाहल कानों के पर्दे फाड़ देता है। वैसे, इक्का-दुक्का सियार तो प्राय: देखे जाते है।

यद्यपि सब सियार एक ही जाति के हैं—सियार ही ! परन्तु अन्य सभी जीवों की भाँति इनमें भी सामान्य रूप में प्रजातीय अन्तर पाया जाता है। ऐसा ही एक-सियार वर्ग है—मोतिया सियार ! यह अपेक्षाकृत कुछ मोटा, बड़ा, फुर्तीला, गहरे रङ्ग का और नेत्रत्व (नेतागिरी) के गुणों से सम्पन्न होता है , जैसे देशी बन्दरों में—कोई-कोई बहुत मोटा, ताजा भारी भरकम, हिंसक, उग्र, तानाशाही प्रकृति वाला दीख पड़ता है। वह जिस समूह में होता है, सारे बन्दर उसी के नियंत्रण में रहते हैं। वह अपने वर्ग-समूह का महन्त होता है। महन्त बन्दरों में एक और होता है—सुपर महन्त ! वह भी भारी-भरकम लेकिन निरा एकाकीं रहता है। शायद वह किसी कुण्ठा के कारण वीतराग हो चुका होता है। समूह के प्रति उसमें लगाव नहीं रहता। परन्तु व्यक्तिवादी स्वभाव के कारण वह अपने खाने-पीने का चौकस ध्यान रखता है। इस नाते वह समूह वाले महन्तों से कहीं अधिक वलिष्ठ, मोटा-ताजा और निर्भय होता है। फिर भी आक्रमण बहुत कम करता है। उपद्रव और अराजकता के बदले उसमें आत्म-रक्षा, आरामतलवी और एकान्त सेवन की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। एक तरह से वह परम हंस होता है। बोलचाल की भाषा में उसे 'अकेलवा' कहते हैं। शायद उसी की जीवन-सरणि को देखकर गुरुदेव टैगोर ने लिखा था— 'एकला चलो रे !

अस्तु, महन्त बन्दर की तरह एक महन्त-सियार भी होता है—उसी मोतिया-वर्ग का ! सम्भव है, वह यही सामान्य सियार हो, और वह अपने डीलडौल, स्वभाव, नेतृत्त्व-शक्ति (महन्तपन) के कारण 'मोतिया' कहा जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि सामान्य- नर-सियारों की अपेक्षा इसमें कुछ विशिष्टता (शारीरिक और स्वभावगत) अवश्य होती है। रात में प्रथम प्रहर के बाद, जङ्गल में पेट भरने के चक्कर में घूम रहे सियार बोलना बन्द कर देते हैं। उस समय लगभग आधी रात (दोपहर रात बीतते-बीतते) को उस मोतिया महन्त पर एक तरह की सनक (जुनून) सवार हो जाती है और वह अपने स्वाभाविक स्वर में गाने (चिल्लाने) लगता है। उसका चिल्लाना आरोह-अवरोह के साथ बहुत ही सङ्गीतात्मक होता है। उसका वह सङ्गीत आसपास के सियारों के लिए आह्वान गीत होता है। वे सब उसकी आवाज सुनते ही चिल्लाते हुए, उसकी ओर दोड़ पड़ते हैं। थोड़ी देर तक प्रचण्ड कोलाहल मचा रहता है। फिर अन्य सियार तो गाते-चिल्लाते इधर-उधर हो जाते हैं। परन्तु वह महन्त अपनी जगह पर ही खड़ा अलाप भरता रहता है।

थोड़ी देर बाद अन्य सियार तो वहाँ से चले जाते हैं , महन्त वहीं गिरकर अचेत हो जाता है । प्रभातकालीन वायु, (उषा-बेला) का स्पर्श उसे जगाता है, और तब वह उठकर अपनी माँद की ओर चल देता है । उसी महन्त मोतिया के पास सियारसिंगी होती है ।

यह तथ्य सर्व-स्वीकृत है कि सियारसिंगी, केवल नर-सियार के पास होती है और वह नर-सियार, सामान्य जाति का न होकर, एक विशेष वर्ग (मोतिया) का होता है । शिकारी लोग, जिन्हें सियारसिंगी की तलाश रहती है—जङ्गलों में ऐसे मौके पर छिपे बैठे रहते हैं । रात में सियारों का 'सङ्गीत समारोह' समाप्त हो जाता है, और सबके चले जाने पर मोतिया-सियार गिरकर अचेत हो जाता है, उस समय पास की झाड़ी में छिपे शिकारी दौड़कर सियारसिंगी निकाल लेते हैं । सियार के माथे (सिर) या दोनों कानों के बीच, भौंहों के ऊपर—एक छोटी-सी गोल गाँठ उभरी रहती है, जिसमें कील जैसी छोटी-सी नोंक भी टटोलने पर महसूस होती है । वही गोल गाँठ सियारसिंगी है । बेहोश पड़े सियार के सिर से वह गाँठ काट लेना आंसान रहता है । अब तो आग्नेयास्त्र भी बन गये हैं , अत: शिकारी लोग मोतिया को पहिचानते ही गोली मार देते हैं और दोड़कर चाकू से सियारसिंगी काट लेते हैं । जो भी हो, है यह सियार से शरीर से प्राप्त एक अङ्ग ही ।

अन्य कई जानवरों- (बकरे, हिरन, मेड़ा, बैल, कुत्ता आदि के शरीर में भी कभी-कभी नाभि के पास अथवा अन्य किसी अङ्ग में ऐसी गोल गाँठ देखी जाती है) मैंने स्वयं एक दिन कानपुर स्टेशन पर वन्य-जातियों के एक समूह को देखा, वह एक लम्बी पतली डोरी में 84 गाँठें पिरोये, धूप में डाले सुखा रहा था । पूछने पर बताया गया कि सियारसिंगी है । एक ने कहा—कस्तूरी है । लेकिन मैंने पहिचान लिया—वह सब बकरे की नाभियाँ थी । ऐसे ही लोग जाल-फरेब करके, सियारसिंगी और कस्तूरी बताकर, बकरे-भेड़ की नाभि-ग्रन्थियों को मुँह माँगे दामों में बेचकर सामान्य जनता को ठगते रहते हैं ।

मैंने स्वयं पचासों सियारसिंगी देखी हैं, परन्तु उनके रूपाकारों में इतनी भिन्नता मिली कि मैं शङ्काग्रस्त हो गया । निर्णय नहीं कर पाया कि कौन असली है, कौन नकली ? एक तो साधारण चमड़े की थैलियाँ थी, जिनमें किसी जानवर का नाखून भरकर गोंद से चिपकाकर गोल गाँठ का रूप दे दिया था । आशय यह है कि सियारसिंगी कदाचित ही मिल पाती है । लेकिन यदि वह प्राप्त हो जाये तो

अनेक प्रकार के विस्मयकारी तान्त्रिक-प्रयोग किये जा सकते हैं। दैनिक-जीवन में समस्याओं से सम्बन्धित कुछ विशेष तान्त्रिक-प्रयोग यहाँ लिखे जा रहे हैं। यदि किसी को असली सियारसिंगी प्राप्त हो जाये और वह उसे विधिवत् शोध करके (पूजनादि से सशक्त बनाकर), नियमानुसार प्रयोग करे, तो अवश्य ही उसके चमत्कारी प्रभाव का लाभ उठा सकता है।

सियारसिंगी को तामसिक और सात्त्विक—दोनों प्रकार के कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु उसके शोधन की प्रक्रिया सभी के लिए अनिवार्य है। बिना शोधन के सियारसिंगी (बल्कि कोई भी तान्त्रिक वस्तु) प्रभावशील नहीं होती।

शोधन विधि :

सियारसिंगी प्राप्त हो जाने पर उसे साफ करके शुद्ध जल से स्नान करायें (धो लें) फिर पीले वस्त्र पर स्थापित करके उसे साक्षात् लक्ष्मी मानकर पूजा करें। पूजा में लाल चन्दन, हल्दी, अक्षत्, पुष्प तथा सिन्दूर प्रयुक्त होता है। धूप-दीप देकर नेवैद्य के साथ कोई धातु-मुद्रा (सिक्का) भी चढ़ायें। उसके पश्चात 'ॐ श्रीं श्रियेनमः' अथवा 'ॐ श्री महालक्ष्म्यै नमः' मंत्र का जप कम से कम पाँच माला अवश्य करें। इस विधि से सियारसिंगी शोधित हो जाती है।

तान्त्रिक प्रयोग :

● शोधित सियारसिंगी को अन्न-भण्डार, कोष, गल्ला, तिजोरी आदि धनामय वाले स्थान पर रखा जाये तो धन-धान्य की वृद्धि होने लगती है।

● स्नानोपरान्त नित्य देवी-प्रतिमा की भाँति इसका दर्शन, अभिवादन, पूजन भी साधक को यश, सौख्य, सुख-शान्ति प्रदायक है।

● उच्चाटन, शत्रु-विद्वेषण आदि पातक-कार्यों में भी इसकी महली भूमिका का शास्त्रों में वर्णन है, किन्तु मैं अभिचार-कर्मों का पक्षधर नहीं हूँ, अतः उन क्रियाओं का उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा है।

10 एकाक्षी नारियल

सामान्य परिचय :

नारियल से सभी परिचित हैं। नारियल, नारिकेल, कोला, कोकोनट, गरी, गोला, खोपरा, श्रीफल आदि इसी के नाम हैं। (श्रीफल—बेल को भी कहते हैं और समुद्रतट पर पाये जाने वाले एक अन्य फल को भी 'श्रीफल' कहते हैं) भारतीय-अध्यात्म में यह एक शुभ वनस्पति और पूजा-पाठ में आदि में प्रयुक्त होने वाला पवित्र फल है। इसकी रचना विचित्र होती है। फलों में बेल और बादाम सर्वाधिक कठोर आवरणधारी फल माने गये हैं। परन्तु नारियल इनसे भी अधिक कठोर आवरण में रहता है।

पौराणिक मान्यता है कि नारियल की रचना ब्रह्माजी ने नहीं की, बल्कि यह विश्वामित्र मुनि की सृष्टि है। प्रसिद्ध है कि एक बार ब्रह्माजी और विश्वामित्र में विवाद हो गया ब्रह्माजी अखिल सृष्टि के रचनाकार हैं। सम्पूर्ण जगत में जो कुछ भी चर-अचर दृष्टिगोचर होता है—जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग और वानर-मानव सब—उन्हीं का कृतित्त्व है।

परन्तु एक बार विश्वामित्र जी ने जो अपनी उग्र तपस्या के कारण अलौकिक शक्तियों के स्वामी हो गये थे, ब्रह्माजी के विरुद्ध घोषणा कर दी—'तुम पंचतत्त्व से सृष्टि रचना करते हो, मैं वृक्षों से मानव की उत्पत्ति करूँगा।' और यह कहकर उन्होंने कमण्डल से थोड़ा जल लेकर भूमि पर छिड़क दिया। तत्काल वहाँ अंकुर निकले जो कुछ ही देर में बढ़ते हुए—गगन-चुम्बी वृक्ष बन गये। फिर उन वृक्षों से मानव-मुण्ड की उत्पत्ति हुई। चेहरा बन गया, दो आँखें बन गयीं, मुख बन गया, रोम-राशि के स्थान पर रेशे भी उत्पन्न हो गये। निकट था कि मुण्ड के बाद शेष शरीर (कवच और हाथ-पैर आदि) का भी निर्माण होता। परन्तु देवताओं ने ब्रह्माजी की गरिमा सुरक्षित रखने के लिए विश्वामित्रजी से क्षमा-याचना करते हुए उनका कोप शान्त किया और ब्रह्मा-कृति सृष्टि में व्यवधान अथवा विकल्प उत्पन्न न करने की प्रार्थना की। तब विश्वामित्र जी ने शान्त होकर सृष्टि-रचना का कार्य रोक दिया।

भले ही इस प्रसङ्ग को एक मिथक मान लिया जाय, परन्तु 'नारियल' की उपयोगिता असंदिग्ध है। भारतीय संस्कृति में नारियल बहुत शुभ, पवित्र और कल्याणकारी माना जाता है। पूजा-पाठ के अवसर पर देवताओं को नैवेद्य में, हवन यज्ञ आदि में नारियल का उपयोग होता है। भेंट, उपहार, तिलक, मङ्गल-कलश, फलाहार औषधि के सन्दर्भ में भी यह फल प्रयुक्त होता है। इसके पेड़ समुद्र तटीय क्षेत्रों में अधिक होते हैं।

मैंने दक्षिण-यात्रा में मद्रास से कन्याकुमारी तक इसके लाखों पेड़ देखे थे। ताल (ताड़) की भाँति ऊँचे, सीधे, गगनचुम्बी वे नारियल के पेड़ अपनन आसपास के हरे-भरे परिवेश में, ऊर्ध्वरेता तपस्वियों की भ्रान्ति उत्पन्न कर रहे थे। मुझे प्राकृतिक दृश्य बहुत प्रिय हैं, इसलिए दक्षिण यात्रा में वन्य-हरीतिमा, नारियल के वन, ताल और सुपारी के बगीचे देखने में इतना तन्मय हो जाता था कि रेल या बस बीसों मील की दूरी पार कर जाती थीं, पर मैं अपने वाहन की विपरीत दिशा में भाग रहे पंक्तिवृद्ध वृक्षों पर से निगाह नहीं हटा पाता था। आम, जामुन के वक्षों में शाखाएं होती हैं, इसलिए उनके रूपाकार में भिन्नता होती है। परन्तु ताल, खजूर, नारियल और सुपारी के वृक्ष एक समान होते हैं, इसलिए उनकी छवि-छटा मानस-पटल पर देर तक अङ्कित रहती है।

नारियल बहु-उपयोगी वृक्ष है। मैंने बंगाल के गाँवों (सुन्दर वन) में देखा था, नारियल के पत्तों में छप्पर छाये हुए थे। पंखे बनाकर बेचे जा रहे थे। हस्त-शिल्प की तमाम चीजें—पर्स, बैग, डोलची आदि बाजार में बिक रहे थे। हरे नारियल का पानी (डाभ) परम पौष्टिक, पाचक और शीतल होता है। अनेक रोगों में वह औषधि का काम करता है। नये फल का डाभ गाढ़ा मीठा होता है, पर ज्यों-ज्यों फल कड़ा होकर पकने की स्थिति में जाता है, उसके भीतर का दूध (डाभ) जमकर सादे पानी जैसा रह जाता है। फिर भी लोग उसे बड़े चाव से पीते हैं। मैंने स्वयं भी कई बार डाभ पीकर तृप्ति का अनुभव किया है।

नारियल का फल सर्वसुलभ है। मद्रास-क्षेत्र, बम्बई-क्षेत्र और बंगाल में यह भारी मात्रा में आता है। आप किसी भी नगर या कस्बे में देखें, बरसात (जुलाई से अक्टूबर तक) में नारियल के हरे (दूधिया) गोले हथठेलियों पर बिकते मिलेंगे। फल पर मोटे रेशों का छिलका जैसा आवरण होता है। वे रेशे निकाल देने पर बेल जैसा कड़े छिलके का अण्डाकार नारियल-फल दीख पड़ता है। इसे सामान्यतः 'गोला' कहते हैं। उसे पटक कर या किसी चीज से तोड़ें तो वह मोटा छिलका

तड़कदार टूटन के साथ अलग होता है। उसके भीतर गरी होती है। सावधानी से पूरा छिलका निकालने पर गरी का समूचा अभङ्ग गोला प्राप्त होता है। पका हुआ सूखा गोला 'मेवा' की श्रेणी में आता है। उसमें दूध नहीं रहता, बल्कि दूध सूखकर तेल (घी) का रूप ले लेता है। नारियल का तेल, वही गरी का 'घी' है। यह ठण्डा, मीठा, पौष्टिक, केश-बर्द्धक, नेत्र-ज्योति-रक्षक और शान्तिदायी होता है। पंच-मेवा में गरी भी एक घटक है।

अस्तु, जहाँ नारियल की जटा (रेशे) से रस्सी बनती है (बहुत मजबूत और मोटी-पतली हर तरह की) वहीं कई तरह की अन्य प्रयोजनीय वस्तुएं—कारपेट, पैरपोश, कुशन, गद्दे आदि बनते हैं। गरी को मेवा और पौष्टिक खाद्य तथा औषधीय घटक के रूप में स्थान प्राप्त है। गरी के पानी (दूध-डाभ) का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इन सबके अलावा और सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग है—नारियल का आध्यात्मिक साधना में प्रयुक्त होना। इस प्रकार अपनी उत्पत्तिगत, विचित्रता, बहुक्षेत्रीय उपयोगिता और आध्यात्मिक प्रभाव के कारण नारियल भारत का सर्वाधिक चर्चित फल है। देखने में भले ही यह कुरूप होता है, परन्तु स्वाद, प्रभाव, गुणवत्ता में यह अनुपम है।

दुर्लभ एकाक्षी नारियल :

सामान्यतः नारियल के प्रत्येक फल पर रेशा (जटा) उतारने के बाद टहनी की ओर तीन काले बिन्दु दीख पड़ते हैं। मान्यता है कि इनमें से दो बिन्दु नेत्रों के प्रतीक हैं और एक मुख का ! गौर से देखें तो नारियल का गोला मानवाकृति से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। यहाँ तक कोई विचित्रता नही, यह तो नारियल की प्राकृतिक रचना है ही। उसकी प्रमुख और अत्यधिक प्रभावशाली विचित्रता यह है कि किसी-किसी गोले पर तीन नहीं केवल दो बिन्दु पाये जाते हैं। अर्थात् उस पर दो नेत्रों की जगह ऐक नेत्र और मुख होता है। तान्त्रिक ग्रन्थों में इस तरह के फल (गोले) को 'एकाक्षी नारियल' कहा गया है—एक आँख वाला नारियल।

ऐसा फल बहुत कम प्राप्त होता है . कहीं निकला भी तो बहुत ऊँचे दामों में बिकता है। मैंने दक्षिण-यात्रा में बहुत खोज की, परन्तु कहीं न मिला। मद्रास, तिरुपति, ऊटी, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, गोआ और बम्बई तक, मैं इसके लिए प्रयासरत रहा, परन्तु कहीं नहीं दीख पड़ा। कई बार तो मेरे साथी और फल विक्रेता अविश्वास के सुर में मेरा परिहास भी करने लगे। उसकी मान्यता थी कि ऐसा फल

होता ही नहीं । परन्तु बाद में, मुझे अपने नगर कानपुर में ही वह अलभ्य फल 'एकाक्षी-नारियल' प्राप्त हो गया । फिर तो प्रभु की कुछ ऐसी कृपा हुई कि जहाँ मैं एक फल के लिए तरस रहा था, वहाँ मुझे एक दर्जन मिल गये । मैंने अपने कई स्वजनों, मित्रों और स्नेहियों को भी वे भेंट-स्वरूप दिये ।

तान्त्रिक प्रयोग :

नारियल का फल सदैव शुभ होता है । प्रतिबन्ध यही है कि वह भग्न (टूटा-फूटा) न हो । समूचा फल ही ग्राह्य होता है । बाद में, पूजनोपरान्त उसे तोड़कर प्रसाद रूप में गरी को ग्रहण करते हैं । परन्ततु यहाँ जिस 'एकाक्षी-नारियल' की चर्चा की जा रही है, वह प्रसाद के लिए नहीं केवल पूजन के लिए प्रयुक्त होता है । उसे तोड़ना ही नहीं चाहिए ।

चूँकि यह फल दुर्लभ होता है, अतः यदि कहीं दीख पड़े तो तुरन्त ले लेना चाहिए । क्योंकि मुहूर्त्त की प्रतीक्षा में यदि बिक गया (हाथ से निकल गया तो बड़ा परिताप होता है) । और यदि कहीं ऐसी जगह पर है जहाँ से आप बाद में कभी (शुभ मुहूर्त्त में) प्राप्त कर सकते हैं, तो वहीं रहने दें, और फिर किसी शुभ-मुहूर्त्त में ले आयें ।

तान्त्रिक-प्रयोगों के लिए—अमृत-योग, सिद्ध-योग, पुष्य-योग (रविपुष्य या गुरुपुष्य-सर्वश्रेष्ठ) जैसा कोई शुभ-मुहूर्त्त होना चाहिए । इसका पता पंचांग देखकर लगा लें । आशय यह है कि 'एकाक्षी-नारियल' किसी शुभ मुहूर्त्त में ही लाकर घर में रखें । यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो जब भी मिले, भगवान विष्णु और लक्ष्मीजी का ध्यान करते हुए उसे ले आयें और घर में किसी पवित्र स्थान (पूजा-स्थल) में रख दें। बाद में, जब कोई शुभ-मुहूर्त्त आ जाये तब उसकी विधिवत् पूजा करें ।

पूजन-विधि (तान्त्रिक-साधना) :

रविपुष्य या गुरुपुष्य अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में जो भी सुलभ हो, प्रातः स्नान करके शुद्ध स्थान पर आम की लकड़ी का (पीढ़ा, पाटी, पटरा, चौकी) आसन रखें । उस पर लाल कपड़ा बिछायें । दैनिक-देव पूजा करके थाली में उस फल (एकाक्षी-नारियल) को रखें । उस पर गंगाजल या शुद्ध कूप जल छिड़क कर उसे स्नान करायें । साफ कपड़े से पोंछकर उसे पीढ़े पर बिछे लाल कपड़े पर रख दें । फिर यह कल्पना करें कि यह नारियल नहीं, साक्षात् लक्ष्मीजी की प्रतिमा

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। उस पर लाल कपड़ा, लाल चन्दन, सिन्दूर चढ़ायें, पुष्प-अक्षत अर्पित करें, धूप-दीप दें, कोई मीठा नैवेद्य (प्रसाद) अर्पित करें और कोई मुद्रा (सिक्का) चढ़ायें। इसके पश्चात लक्ष्मीजी का स्तवन, ध्यान, पूजन करते हुए मन्त्र-जप आरम्भ करें। मन्त्र-जप के पूर्व ही यह संकल्प कर लें कि मैं एकाक्षी-नारियल रूपी लक्ष्मी-प्रतिमा की पूजा प्रसन्नता हेतु..................माला जप करूँगा। फिर उतनी ही माला जप करें। माला में 108 दाने होते हैं। यदि आपने दस माला जप किया तो 1080 जप हो जायेगा। इस तरह अपनी संकल्पित संख्या में मन्त्र का जप करें कम से कम 11 या 21 माला अवश्य जपना चाहिए।

तदन्तर उस नारियल को कहीं सुरक्षित आसन वाले कपड़े सहित किसी थाली, तश्तरी, कटोरी में रखें। चाँदी की तश्तरी, कटोरी हो तो अत्युत्तम ! प्रथम दिन मन्त्र की जनसंख्या पूरी हो चुकने पर वही मन्त्र पढ़ते हुए 21 आहुतियां देकर हवन भी करना चाहिए। हवनोपरान्त कम से कम एक ब्राह्मण को भोजन कराकर कुछ दक्षिणा दें। तत्पश्चात नारियल को किसी पात्र के आसन में कहीं सुरक्षित रख दें। फिर नित्य उसकी सिन्दूर (हो सके तो पुष्प भी) और धूप-दीप से पूजा करते रहें। यथासम्भव कभी-कभी उस पर कोई मुद्रा भी (सिक्का) चढ़ाते रहें। 'एकाक्षी नारियल' का यह प्रयोग आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभकारी,समृद्धिदायक होता है।

प्रभाव :

जिस घर में एकाक्षी-नारियल की पूजा होती है, वहाँ लक्ष्मी जी सदैव वास करती हैं। अन्न के भण्डार में, तिजौरी में, आलमारी में, देव-प्रतिमाओं के साथ में, कहीं भी इसे रखें, और दैनिक-पूजन दर्शन करें, इससे अन्न, धन और श्री-सम्पत्ति की वृद्धि होती है। व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए भी यह परम लाभकारी होता है।

मन्त्र :

एकाक्षी-नारियल की साधना में 'ॐ श्रीं श्रियै नमः' मन्त्र का, पूजा के समय तक जप करना चाहिए।

चूँकि एकाक्षी नारियल को भगवान लक्ष्मी का प्रतीक माना गया है। अतः एकाक्षी नारियल साधना के पश्चात निम्नांकित श्लोक द्वारा विष्णु भगवान (लक्ष्मीजी के प्रियतम) का स्तवन कर लेना भी साधना के प्रभाव में सम्बर्द्धनकारी सिद्ध होता है।

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्ण चतुर्भुम्,
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।
व्यासं वसिष्ठनप्तारं सक्तेः पौत्रमकल्मषम्,
पाराशरत्मजं वन्दे शुक्रतातं तपोनिधिम् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्ययसरूपाय विष्णवे,
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ।
चतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः,
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥

निषेध :

अपवित्र व्यक्ति उस नारियल को छुएं नहीं । उसे आसन पर रखते समय यह ध्यान रहे कि छोटा बिन्दु ऊपर और बड़ा बिन्दु नीचे की ओर रहे ।

❀

11 निर्गुण्डी

सामान्य परिचय :

सड़क-किनारे, नदी, नालों के कगारों पर, जंगलों और ऐसो ही स्थानो पर एक पौधा उगता है । यह अरहर के पेड़ जैसा होता है, परन्तु लम्बी शाखाओं के कारण विस्तार अधिक पा जाता है । इसकी पत्तियाँ भी अरहर की पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं । एक डण्डी में तीन या पाँच (प्राय: पाँच ही) पत्तियाँ पायी जाती हैं । पत्तियों की बनावट अरहर की पत्ती से बहुता साम्य रखती है, परन्तु अरहर की पत्ती जहाँ हरी होती है, इसकी पत्ती पर सफेदी (जैसे कोई सफेद पाउडर पुता हो) देखी जाती हैं । ये पत्तियां छूने में रोमयुक्त, मखमली प्रतीत होती हैं । वर्षाृतु में इसका पौधा खूब पनपता है, लेकिन जाड़े में इसकी बाढ़ रुक जाती है, और बड़े पेड़ों की भाँति बसन्त ऋतु में इसकी भी पत्तियाँ झड़ जाती हैं । ग्रामीण भाषा में इस पौधे को 'मैउडी' कहते हैं ।

वैसे, इसके अन्य कई नाम भी प्रचलित हैं । संस्कृत और आयुर्वेद में इसे 'निर्गुण्डी' कहते हैं। इसका एक नाम और भी बहुत प्रचलित है—सम्हालू ! प्रादेशिक भाषाओं में यह सिन्दुवार, सिन्धुर, अर्थ-सिद्धक, भूतकेशी, इन्द्राणी आदि नामों से भी विख्यात है । यहाँ ध्यान रखें कि 'इन्द्राणी' निर्गुण्डी (सम्हालू) को कहते हैं, परन्तु 'इन्द्रायण' एक भिन्न वनस्पति है, जिसके फल सुन्दर होकर भी बहुत कड़ुवे होते हैं । यह इन्द्रायण भी एक स्वतंत्र वनस्पति है, औक आयुर्वेद में इसके भी बहुविधि प्रयोग बताये गये हैं । अस्तु, यहाँ हम 'निर्गुण्डी' अर्थात् सम्हालू नामक वनस्पति के कुछ औषधीय गुण जो तन्त्र-साधना से सम्बन्ध रखते हैं, लिख रहे हैं :—

निर्गुण्डी के तान्त्रिक-प्रयोग :

'रविपुष्य' योग में, पूर्व निमंत्रण देकर 'निर्गुण्डी' पौधे के प्रयोज्य अङ्ग ले आयें । वैसे, जड़ विशेष उपयोगी होती है, अत: 'जड़' अवश्य लायें ।

'जड़' लाकर घर में धोयें (साफ करें) फिर पोंछकर साफ कपड़े पर रखें,

और लाल चन्दन धूप, दीप से पूजा करें । तत्पश्चात् उसे कपड़े में लपेटकर रख दें । बाद में, प्रयोजनानुसार इसको (शुभ मुहूर्त्त में ही) निर्दिष्ट-नियमों के अनुसार काम में लायें ।

स्वर-शोधक प्रयोग :

निर्गुण्डी-मूल को सुखाकर पीस लें । यह चूर्ण प्रतिदिन प्रातः (3 माशे की मात्रा में) गुनगुने (गर्म) जल से सेवन किया जाये, तो कण्ठावरोध दूर होकर समस्त प्रकार के उच्चारण-दोष समाप्त हो जाते हैं और स्वर अत्यधिक मधुर हो जाता है । संङ्गीत साधकों के लिए यह प्रयोग बहुत लाभकारी होता है ।

निर्गुण्डी
VITEX TRIFOLIA LINN.

कृशता-निवारक प्रयोग :

'निर्गुण्डी' का चूर्ण प्रतिदिन प्रातःसायं घी में मिलाकर सेवन करने से शारीरिक-कृशता दूर होकर, व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट हो जाता है । योग-सेवन के पश्चात थोड़ा-सा दूध भी पीना चाहिए । यह प्रयोग शक्ति-बर्द्धक और रक्त-शोधक है । अतः पाचन-क्रिया और रक्त-संचार को ठीक करके शरीर में रस-रक्त की वृद्धि करता है । दुबले-पतले कृशकाय और क्षीण व्यक्ति इस प्रयोग से अपने शरीर को स्वस्थ-सबल बना सकते हैं ।

रक्त-शोधक प्रयोग :

'तन्त्र-शास्त्र' आयुर्वेद के बहुत निकट है । कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'आयुर्वेद' वस्तुतः 'तन्त्र-शास्त्र' का एक अङ्ग है । आयुर्वेद में विभिन्न घटकों के मिश्रण से औषधियाँ तैयार की जाती हैं । तन्त्र में पदार्थ-प्रयोग के साथ—मन्त्र, क्रिया, मुहूर्त्त, स्थान और व्यक्ति को भी महत्त्व प्राप्त है । अतः जो प्रयोग आयुर्वेद में सामान्य रूप में वर्णित है, वही तन्त्र-शास्त्र में विस्तार से प्राप्त होता है । अस्तु, तन्त्र प्रयोंगों के क्रम में निर्गुण्डी का वर्णन करते हुए यहाँ उसके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग प्रस्तुत किये जा रहे हैं, उन्हीं में से एक है—'रक्त-शोधक तन्त्र !'

यदि शरीर मेंरक्त दूषित हो जाये तो अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होकर व्यक्ति को पीड़ित करने लगती हैं । खाज, खुजली, दाद, घाव, फोड़ा, फुन्सी अनेक

प्रकार के चर्म-विकार यहाँ तक कि कुष्ठ जैसा भयंकर और घृणाजनक रोग भी। यह सब रक्त दोष के कारण उत्पन्न होते हैं। अत: रक्त-शोधन का महत्त्व सर्वोपरि है। जहाँ चिकित्सा-शास्त्र में रक्त शुद्ध होने की बहुविधि औषधियाँ प्राप्त होती हैं, वहीं तन्त्र-शास्त्र में भी ऐसे सरल किन्तु चमत्कारी प्रयोग प्राप्त होते हैं कि उनका प्रभाव देख-देखकर बड़े-बड़े चिकित्सा-विशेषज्ञ और भिषगाचार्य दिङ्मूढ़ रह जाते हैं।

असली निर्गुण्डी बूटी

रक्त-शोधन के लिए निर्गुण्डी का प्रयोग इस प्रकार है :—

'निर्गुण्डी-मूल' का चूर्ण बनायें। इसको नित्य प्रातः-सायं तीन माशा की मात्रा में, शहद में मिलाकर सेवन करें, ऊपर से साफ ताजा पानी पी लें। रक्त-शोधन के साथ इस प्रयोग से, रक्त-विकारों से उत्पन्न अनेक प्रकार के चर्म-रोग—खाज, खुजली, दाद आदि दूर हो जाते हैं। रक्त-शुद्धि के प्रयोग से व्यक्ति का शरीर स्वस्थ-सबल होने लगता है और चेहरे पर कान्ति आ जाती है।
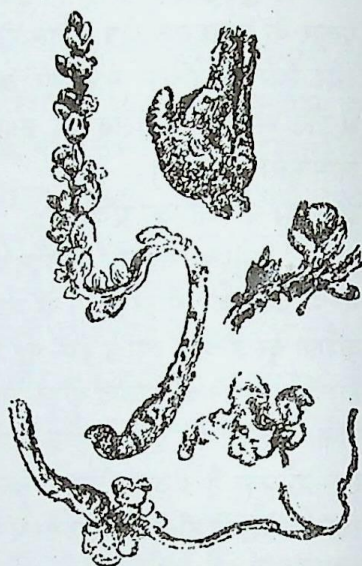
ध्यान रहे कि औषधि सेवन और तान्त्रिक प्रयोग सदैव शुभ-मुहूर्त्त में ही आरम्भ किये जाते हैं। अशुभ समय, दुर्योग, कुबेला और वर्जित काल में किया गया कार्य कभी सफल नही होता, बल्कि और घातक हो जाता है। इसलिए जहाँ वस्तु की शुद्धता और मात्रा पर ध्यान दिया जाना है, वहीं उसके प्रयोग-काल (उपयुक्त समय मुहूर्त्त) को भी स्मरण रखना चाहिए।

निर्गुण्डी-कल्प :

'निर्गुण्डी' के कुछ ऐसे प्रयोग भी प्राचीन-ग्रन्थों में वर्णित हैं, जो कायाकल्प कर देते हैं। 'कायाकल्प' का अर्थ हैऽशरीर को नवीनता प्राप्त होना। आयुर्वेद में भी इसके कई प्रयोग वर्णित हैं, जो मानव-शरीर को स्वस्थ, सबल, युवा बना देते हैं। अस्तु, निर्गुण्डी के विषय में वनस्पति-शास्त्रियों, तन्त्राचार्यों और प्रयोक्ताओं ने बहुविधि अनुभव करके इसके 'कल्प' का वर्णन इस प्रकार किया है :—

'निर्गुण्डी-मूल' का चूर्ण बनायें। इसके प्रतिदिन प्रातः-सायं अजामूत्र (बकरी के मूत्र) के साथ सेवन करें। यह प्रयोग मानव-शरीर में निम्नलिखित परिवर्त्तन ला देता है :—

● यह योग यदि एक सप्ताह तक निमित रूप से सेवन किया जाय, तो नख, केश, दन्त का परिवर्त्तन कर देता है। उल्लेख मिलता है कि वर्त्तमान, नाखून, दाँत, बाल सब डीले होकर गिर जाते हैं, और पुनः नये उग आते हैं।

● ब्रह्मचर्य, सात्विक-जीवनय, योगासन, मन्त्र-जप एकान्त-निवास, शुद्ध-सात्त्विक फलाहार के साथ जो साधक इस योग को 21 दिनों तक लगातार सेवन करता है, वह अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। उस व्यक्ति के लिए जल और शस्त्रादि से कोई भय नहीं रहता। मान्यता है कि यह प्रयोग जल-स्तम्भन और शस्त्र-स्तम्भन कर देता है। अर्थात् उस व्यक्ति को जल में डूबने का खतरा नहीं रहता। और शस्त्र लगने पर उसे चोट-घाव के अनुभूति नहीं होती।

● इसे 'खेचरी विद्या' का मूर्त्तरूप माना जाता है। यदि 40 दिनोंतक कोई साधक पूर्ण मनोयोग से, संयम के साथ (ब्रह्मचर्य-पालन और सात्त्विक-आहार, भूमि-शयन, ईश्वर-चिन्तन, शान्ति, अक्रोध, अलोभ, द्वेषादि मनोविकारों से सर्वथा मुक्त) इस प्रयोग को करता रहे तो वह अलौकिक-शक्ति सम्पन्न होकर खेचरी-विद्या में निपुण हो जाता है। खेचरी-विद्या की सिद्धि व्यक्ति को आकाशगामी बना देती है। वह वायुचारी होकर पक्षी की भाँति कहीं भी उड़ सकता है। आज भी हनुमानजी तथा अन्य कितने ही ऋषि-मुनियों द्वारा वायु-विहार करने के प्रसङ्ग पढ़े-सुने जाते हैं।

शान्तिदायी तन्त्र :

शुभ-मुहूर्त्त में लाकर, विधिवत पूजी गयी 'निर्गुण्डी की जड़' बहुत ही शान्तिदायक होती है। इसे लाकर घर में कहीं सुरक्षित (पवित्र स्थान में) रख दें तथा किसी कपड़े में बाँधकर या ताबीज-कवच भरकर, गले या भुजा पर धारण करलें। इसके प्रभाव से घर में सुख-शान्ति रहती है। कलह के कारण घर में दरिद्र आ गया हो, मानसिक तनाव रहता हो, कार्य में अवरोध और आर्थिक-हानि हो रही हो, अथवा अशान्ति, उपद्रव, बैर-विरोध के कारण उत्पन्न कोई अन्य समस्या पीड़ित कर रही हो—उस समय यह प्रयोग बहुत ही लाभकारी होता है।

कभी भी शुभ-मुहूर्त्त में लाकर इसे (निर्गुण्डी-मूल को) घर में रख दें, यह अनेक प्रकार से लाभकारी सिद्ध होगी।

12 कुश

सामान्य परिचय :

धरती की गोद में एक से बढ़कर विचित्र वस्तुएं देखी जाती हैं । जहाँ हम हजारों तरह के पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीट-पतङ्ग देखते हैं, वहीं असंख्य प्रकार की वनस्पतियाँ भी पायी जाती हैं । भारत और विदेशों के कितने ही स्वनामधन्य वनस्पति-शास्त्रियों ने दीर्घकाल तक अनुसंधान-रत-रहकर कितने ही वनस्पतियों के नाम और गुण, उत्पत्ति स्थल और उनके अनुकूल जलवायु आदि का पता लगा लिया है, तथापि हजारों पेड़-पौधे और घासें अब भी विवेचना के लिए शेष हैं ।

भारत में कई प्रकार की घासें होती हैं । ये सभी पशुओं के चारे के रूप मे (कुछ एक को छोड़कर) प्रयुक्त होती हैं । दूब, मोथा, परबा, मंजूर आदि सुलभ घासें हैं, जो प्रायः सभी क्षेत्रों, गाँवों में उगती हैं । वैज्ञानिक खोज के आधार पर इनसे भी अनेक प्रकार के औषधीय प्रयोग पूरे किये जा सकते हैं, परन्तु ऐसा है नहीं । सारी घासें केवल चारे के रूप में प्रयुक्त होती हैं । वैसे, किसी-किसी घास से चटाई, छप्पर, रस्सी आद का निर्माण किया जाता है । औषधि के रूप में प्रायः मोथा (शिरोरोग-नाशक तैल के निर्माण में) और दूर्बा (दूब) का प्रदर-प्रमेह जैसे रोगों की चिकित्सा में उपयोग होता है, बाकी सब जानवरों का चारा है ।

भारत की एक प्रसिद्ध घास है—कुश ! इसकी पत्तियाँ नुकीली और दाँतेदार होती हैं, इसलिए पशु इसे कम चरते हैं । चरते भी हैं, तो बहुत सावधानी से धीरे-धीरे अन्यथा यह उनके मुँह में घाव कर देती है इसी तरह किसान मजदूर भी इसे बहुत कम छीलते हैं, क्योंकि यह हाथ-पैर में चुभकर कष्ट देती है । अगर यह पैर में चुभ जाये तो सुई की चुभन से भी अधिक पीड़ा होती है । एक घटना इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है—मौर्यसमाज के संस्थापक 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के गुरु आचार्य 'विष्णुगुप्त चाणक्य' जो एक बार मगध-नरेश के यहाँ अपमानित हो जाने के कारण उसके वंश परिवार को समूल नष्ट करने के लिए प्रतिबद्ध हो गये थे, (और वैसा कर भी दिखाया था) अपनी युवावस्था में एक दिन कहीं जाते हुए मार्ग में कुशों

की चुभन से क्षुब्ध होकर रास्ते के सारे कुश उखाड़-उखाड़ कर उनकी जड़ों में मटठा डाल दिया था, ताकि वे फिर न पनप सकें, और दूसरे यात्रियों को उनकी चुभन की दारुण वेदना न सहनी पड़े। वस्तुतः कुश की जड़ दीर्घजीवी होती है। ग्रन्थिबाहुल्य के कारण वह अमरत्त्व जैसा प्राप्त किये रहती है। यदि इसकी एक भी गाँठ भूमि में रह जाये तो वह पौधे का रूप धारण कर लेती है।

प्रभाव :

भले ही कुश में भाले जैसा चुभन और आरी जैसी दन्त-पंक्ति होती है, भले ही वह पथिकों के लिए सुखद नहीं—पीड़क है, भले ही वह पशुओं के लिए श्रेष्ठ खाद्य नहीं है, तथापि उसकी गुणवत्ता उसके सारे अवगुणों को, सारे अन्तर्विरोधों को समाप्त कर देती है। अध्यात्म के क्षेत्र में 'कुश' को जो मान्यता प्राप्त है, वह अन्य किसी घास को नहीं। यद्यपि किन्हीं अंशों में 'दूर्वा' भी अति पवित्र पूज्य और प्रभावी है, परन्तु 'कुश' का स्थान उससे बहुत ऊँचा है।

अध्यात्म के क्षेत्र में :

गणेशजी की पूजा में 'दूर्वा' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिव, पार्वती की पूजा में भी उसे बड़ी श्रद्धा से प्रयोग किया जाता है। परन्तु 'कुश' एक ऐसी वनस्पति (घास) है, जिसका प्रयोग—-देवताओं, पितरों और प्रेतों तक के लिए समान रूप से होता है। 'कुश' की पवित्री बनाकर 'अनामिका' में धारण करने पर ही अनेक पूजन-विधान पूर्ण और शुद्ध माने जाते हैं। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान हो, कोई पूजा-पाठ हो, कोई संस्कार हो—आपका पुरोहित आपको पवित्री जरूर पहिनायेगा। वह पवित्री एक प्रकार की मुद्रिका होती है—कुश की बनी हुई अँगूठी ! हवन-पूजन ही नहीं—पितरों का आह्वान, श्रद्धा-तर्पण और क्रिया-कर्म तक में भी पवित्री धारण की जाती है। दिवंगत-व्यक्ति के नाम पर पिण्डदान के समय—'कुश' को ही प्रमुख आधार बनाया जाता है। कश से जल छिड़कना, कुश को व्यक्ति अथवा देवता-

विशेष का स्थानापन्न मानकर उसकी पूजा करना, मण्डप आदि की रचना में उसका प्रयोग तथा अन्य कितने ही धार्मिक-कृत्यों में उसकी अनिवार्यता, उसके आध्यात्मिक महत्त्व को स्वतः उजागर कर देती है।
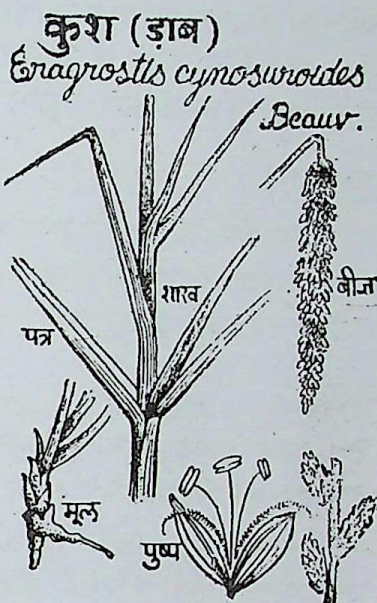
कुश-तन्त्र :

तन्त्र-शास्त्र में 'कुश' के अनेक प्रयोग बताये गये हैं। यह शान्ति धन-धान्य, समृद्धि, पवित्रता, सात्त्विकता और विवेक की वृद्धि करता है। प्रयोग-भेद से 'कुश-तन्त्र' को इस प्रकार समझना चाहिए :—

आसन :

'कुश' घास से बनाया हुआ आसन (बैठकर पूजा करने की छोटी चटाई) बहुत ही लाभकारी, सर्व-सिद्धिदायक, धन-बर्द्धक और देवानुकूलन में सहायक होता है। किन्तु यह भी ध्यान रखें कि बाजार में 'कुशासन' नाम से बिकने वाले आसन वस्तुतः 'कुश' से नहीं—'काँस' नामक घास के बने होते हैं। काँस की पत्ती—लम्बी, पतली और दाँत-काँटों से रहित होती है, जबकि कुश की पत्ती—लम्बाई में कम चौड़ी, चरचरी, दाँतेदार और मोटी होती है। शहर के लोग, जिन्होंने कभी घास देखी ही नहीं, वे इस भेद को नहीं समझ सकते, परन्तु जिन्हें देहात का,प्रकृति का, पैड़-पौधों का, जङ्गल-मैदान और घास-फूस का सामीप्य प्राप्त हो—ऐसे लोग आसानी से कुश और काँस का अन्तर समझ जाते हैं। यों, दूकानदार भी चाहे तो भेद समझाकर असली दे सकता है। वह आसन बनकर बिकने आती हैं।

पवित्री :

'कुश' निर्मित पवित्री 'यथा नाम, तथा गुण' होती है। इसको धारण करने का मुख्य उददेश्य होता है—'साधक का उस समय तन, मन से पवित्र और समस्त बाह्य-बाधाओं से सुरक्षित हो जाना। यद्यपि पवित्री निर्माण का मन्त्र होता है, परन्तु सामान्य साधक वह सब नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में मध्यम मार्ग यह है कि किसी पुरोहित को कुछ दक्षिणा देकर, किसी शुभ-मुहूर्त्त में—उससे 'मन्त्र-सिद्धि पवित्री' बनवा लें। उसे पूजन, अनुष्ठान के समय पहिनें, बाद में उतार कर सुरक्षित रख दें। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि निकृष्ट-कर्म, अभिचारादि की साधना में,

तामसिक-साधना में पवित्री धारण करना वर्जित है। यह केवल सात्त्विक-साधना के समय प्रयुक्त होती है।

कुशमूल की माला :

रविपुष्य योग में कुश की पर्याप्त जड़ें खोद लायें और उन्हें धोकर एक-एक गाँठ काट लें। फिर सुई तागे से या केवल तागे के सहारे एक-एक गाँठ को पिरोकर (बाँधकर) माला बना लें। यदि कुशाग्रन्थि की 108 दानों की माला बनाकर इससे मन्त्र जप किया जाये तो बहुत लाभ होता है। धन-समृद्धि के लिए की जाने वाली पूजा-साधना के मन्त्र जप में इसे वरीयता प्राप्त है। यह बनाने में कुछ असुविधाजनक अवश्य है, परन्तु प्रभाव में अदभुत और निश्चित फल देने वाली है। कार्तिक, अगहन में इसकी जड़ आसानी से प्राप्त हो सकती है, वैसे—खोजने पर तो कभी भी, कहीं से भी ले सकते हैं।

जिस प्रकार कपास, ऊन, बेंत, चर्म, काष्ठ, पत्र, शिला आदि विभिन्न आसनों (बिछाने की चटाई) में कुश का आसन सर्वश्रेष्ठ होता है, वैसे ही मन्त्र जप के लिए निर्धारित विभिन्न मालाओं (शंख, कौड़ी, मोती, मूँगा, पुत्र जीवा, तुलसी, बैजयन्ती, रुद्राक्ष, चन्दन, स्फटिक आदि) में कुशमूल की माला श्रेष्ठ होती है। कुश को 'दर्भ' भी कहते हैं। 'दर्भासन' के प्रसङ्ग अनेक पौराणिक-आख्यानों से प्राप्त होते हैं। भगवान श्रीराम ने वनवास काल में 'कुशासन' पर ही शयन-विश्राम किया था। केवट ने भी श्रीराम के लिए—'कुश' की चटाई प्रस्तुत की थी। लङ्का प्रवेश के लिए—समुद्रतट पर 'पथ-याचना' के समय श्रीराम ने 'कुशासन' पर ही बैठकर 'सागर-स्तवन' किया था। और भी कितने ही ऋषि-मुनियों के जीवन-वृतान्त में कुशासन का उल्लेख मिलता है। यह समस्त सन्दर्भ इस तथ्य को प्रभावित करते हैं कि भारतीय-संस्कृति आध्यात्म और तन्त्र के क्षेत्र में 'कुश' को बहुत पवित्र माना गया है, जो अवश्य ही उसकी अलौकिक प्रभावशीलता पर आधारित है।

धन-बर्द्धक प्रयोग :

'रविपुष्य-योग' में 'कुशमूल' ले आयें। उसको शुद्ध जल से स्नान कराकर, देव-प्रतिमा की भाँति पूजें और लाल कपड़े में लपेटकर भण्डार या तिजौरी में रख दें। दैनिक धूप-दीप भी करते रहें। यह प्रयोग समृद्धिकारी माना गया है।

कुशाग्रन्थि (कुश का बाँदा) :

कुशा-ग्रन्थि का एक अर्थ है—कुश की गाँठ ! परन्तु यह गाँठ—ऊपर की

नहीं, जड़ की मानी जाती है । इस ग्रन्थि का उपयोग माला बनाने में होता है । किन्तु हम जिस ग्रन्थि की चर्चा कर रहे हैं, वह कुश पौधे के ऊपर होती है । प्रचलित भाषा में इसे 'कुश का बाँदा' कहते हैं। पौधे के बीच में तने पर कहीं भी एक काली गाँठ जैसी पड़ जाती है, जो आकार में छोटे बादाम से लेकर—बेर, सुपारी तक के बराबर हो सकती है । यह बहुत ही समृद्धिकारी होती है । 'भरणी' नक्षत्र के दिन इसे घर लायें और लक्ष्मी का प्रतिरूप मानकर, विधिवत् लाल चन्दन, सिन्दूर, कपूर, लौंग, इलायची, पुष्प, अक्षत आदि से पूजा करें और लक्ष्मी-मन्त्र का जप करें । तदुपरान्त लाल वस्त्र में लपेटकर—कोष, भण्डार, तिजौरी कहीं भी सुरक्षित रख दें । यह निश्चित-रूपेण धन-वैभव-बर्द्धक अनुभूत प्रयोग है ।

13 हरिद्रा

सामान्य परिचय :

'हरिद्रा' को बोलचाल की भाषा में 'हल्दी' कहते हैं। यह पीले रंग की एक जड़ी है, जो सुखाकर मसाले के रूप में प्रयुक्त की जाती है। भोजन, साग-सब्जी, मिठाइयाँ, मसाले, चटनी, अचार, अवलेह, पाक, मोदक से लेकर—प्रसाधन (श्रृगार-सामग्री) तक में हल्दी का प्रयोग होता है।

'हल्दी'—कान्ति-बर्द्धक, अनेक रोग-नाशक और शुभ पदार्थ है। इसके पौधे से भी सुगन्ध आती है। हल्दी का पौधा सामान्यतः दो-ढाई फुट ऊँचा होता है। बैजयन्ती-पुष्प के पेड़ को देखिये, हल्दी का पेड़ इससे मिलता-जुलता होता है। ऊँचाई में कम होने पर भी पत्तों की बनावट एक जैसी होती है। हल्दी के पत्ते को नोंचकर मसलिए, और फिर सूँघिये। बड़ी मादक सुगन्ध आती है।

पूजा-पाठ विवाह आदि में जहाँ भी पीला रंग चाहिए, सारे काम हल्दी से होते हैं। हिन्दू-विवाहों में भी वर-कन्या के कपड़े हल्दी से रंगे जाते हैं। हल्दी का उबटन शरीर को स्वर्णिम आभा प्रदान करता है।

तान्त्रिक-प्रयोग :

'हल्दी' को तान्त्रिक-साधना में बहु-उपयोगी द्रव्य माना जाता है। यहाँ कुछ प्रमुख विषयों पर हल्दी के तान्त्रिक प्रयोग लिखे जा रहे हैं:—

पुखराज का पूरक :

नवग्रहों में बृहस्पति को ज्ञान, विद्या, सम्मान, तेज और विवेक का स्वामी माना जाता है। यदि किसी व्यक्ति का बृहस्पति—मन्द, अशुभ अथवा विरोधी है, तो उसकी अनुकूलता पाने के लिए वह 'पुखराज' रत्न पहिनता है। पुखराज यद्यपि सुलभ रत्न है, किन्तु हजारों रुपयों में आता है, फिर भी उसकी शुद्धता और निर्दोषिता संदिग्ध रहती है। पुखराज का सर्वाधिक विश्वसनीय उपरत्न 'हल्दी की गाँठ' है। नयी कच्ची हल्दी की गाँठ लाकर, उसे छील-धोकर पीले कपड़े पर

रख दें। फिर चाकू से उसका गोल छोटा-सा दाना बनाकर, पूीले धागे में पिरोकर, भुजा पर धारण कर लें। पुखराज का पूरक हो जायेगा। ध्यान रहे कि पुखराज अथवा उसके उपरत्न के रूप में 'हल्दी' को धारण करने के लिए 'गुरुपुष्य' योग ही श्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है। अतः गुरुवार के दिन पुष्य-नक्षत्र होने पर, उसके समय में ही यह साधना की जानी चाहिए।

पुखराज की माला :

बृहस्पति की साधना में सिद्धि प्राप्त करने के लिए यदि पुखराज की माला पर जप किया जाय तो बहुत लाभ होता है। परन्तु जो लोग पीले काँच के पालिशदार नगीने भी नहीं पहिन सकते, वहाँ पुखराज दानों की चर्चा करना—रत्नों का उपहास ही होगा। अस्तु, जिसे आस्था और उत्साह हो, वह हल्दी की गाँठों को छीलकर गोल दाने काट लें फिर उन्हें पीले धागे में पिरो लें। बृहस्पति का मन्त्र जपते हुए उस माला की धूप-दीप से पूजा करें। तदन्तर गुरु-ग्रह का मन्त्र जपें। मन्त्र जप के उपरान्त उसी मन्त्र से आहुति देकर हवन करें। हवन में आहुति संख्या—21 से सामर्थ्यानुसार तक हो सकती है। हवनोपरान्त एक ब्राह्मण को पीला भोजन करायें, पीले वस्त्र (गमछा) दान दें। सिक्का (रुपया) हल्दी से रंगकर (पीले रङ्ग की मुद्रा बनाकर) दान दें। माला को हवन के धुएं में शोध लें। यह माला पुखराज माला से भी अधिक गुण-सम्पन्न होती है। फिर, प्रतिदिन उसी माला पर बृहस्पति का मन्त्र जपें। सारे अनिष्ट दूर होकर—ज्ञान, बुद्धि सम्मान आदि की वृद्धि होती है।

गणेश-पूजा में हरिद्रा-माला :

हरिद्रा-माला (हल्दी की गाँठों से निर्मित माला पर) गणेशजी के मन्त्र भी जपे जाते हैं। एक विशिष्ट अनुष्ठान होता है—'हरिद्रा-गणपति-साधना !' उसमें हल्दी का प्रयोग अनिवार्य रहता है। गणेश और बृहस्पति दोनों का साधना में साधक के वस्त्र, आसन, भोज्य-पदार्थ—सब हल्दी के रङ्ग से रंगे होने चाहिए।

हल्दी की माला पर मन्त्र-जप बहुत प्रभावशाली रहता है। पुखराज रत्न के रूप में हल्दी का टुकड़ा और हल्दी के ही रङ्ग में रंगे हुए पीले वस्त्र धारण करना लाभकारी होता है।

धन-बर्द्धक तन्त्र :

'गुरुपुष्य-योग' में अथवा 'गणेश-चतुर्थी' के दिन नहा-धोकर शुद्धतापूर्वक

एक नयी गाँठ (समूची) हल्दी लें। उसे पीले रूमाल में रखें। कुछ चावल के दाने भी (हल्दी में रंगे हुए) उसमें रखें और उसी प्रकार हल्दी रंजित नारियल का समूचा गोला और एक सुपारी (पाँच हों तो अत्युत्तम) भी (हल्दी रंजित) रखें। तत्पश्चात उसे धूप-दीप देकर कोई मुद्रा (सिक्का) जो पहले से हल्दी में रँगा रखा हो, उसे भी उसमें रख दें। अब उस रूमाल को बाँधकर, कहीं भी रख दें। हाँ. दैनिक धूप-दीप अवश्य करते रहें। यह प्रयोग धन-धान्य से समृद्ध बनाता है। इस सम्पूर्ण साधना में 'ॐ नमो केशवाय नमः' अथवा 'ॐ श्री श्रियै नमः' मन्त्र जपते रहना चाहिए।

विघ्न-निवारक प्रयोग :

हल्दी चावल पीसकर, उसके घोल से, घर के प्रवेश-द्वार पर 'ॐ' बना दें। घर समस्त बाधाओं से सुरक्षित रहेगा। चावल न मिलाएं—केवल हल्दी के घोल से लिखें, तो भी यही फल प्राप्त होगा।

लक्ष्मी-निवास तन्त्र :

हल्दी की गाँठ, जहाँ भी (आलमारी), गोदाम, गल्ला, बक्स. (आभूषण-पेटिका में) रखेंगे—वहाँ लक्ष्मीजी की कृपा अवश्य रहेगी। परन्तु वहाँ रहने से पूर्व 'गाँठ' को दो-पोंछकर, लोबान धूप से शुद्ध कर लेना चाहिए। साथ ही, जहाँ रखना हो—उस स्थान को भी धूप-दीप द्वारा शुद्ध कर लेना चाहिए। प्रत्येक क्रिया में 'ॐ श्रीं श्रियै नमः' मन्त्र का जप करते रहना आवश्यक है।

बृहस्पति का मन्त्र :

बृहस्पति-साधना के लिए 'हरिद्रा' का प्रयोग करते समय 'ॐ बृहस्पतये नमः' मन्त्र जपना चाहिए।

कृष्ण-हरिद्रा :

सामान्य रूप में हल्दी का रंग पीला होता है। परन्तु इसकी एक जाति काले रंग की होती है। उसे 'कृष्ण-हरिद्रा' अथवा 'काली-हल्दी' कहते हैं। जहाँ पीली हल्दी पूजा-पाठ, औषधि-निर्माण, तेल उबटन और विविध खाद्य-पदार्थों में प्रयुक्त होती है, वहाँ काली हल्दी को तान्त्रिक-क्षेत्र में 'धन-बृद्धिकारक वस्तु' के रूप में अत्यधिक मान्यता प्राप्त है। परन्तु यह सरलता से मिलती नहीं। हल्दी का पूरा खेत, पूरा ढेर खोजने पर भी 'काली-गाँठ' नहीं मिल पाती। फिर भी यह सत्य है कि—है यह हल्दी ही ! और हल्दी के खेत में ही—एक फालतू, अनुपयोगी

वनस्पति के रूप में अपने आप उगती है। साधारण हल्दी के अलावा एक आँवा हल्दी होती है, एक दारु हल्दी होती है। इसी प्रकार इसे 'काली-हल्दी' की संज्ञा प्राप्त है।

काली-हल्दी की गाँठ में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है—कपूर से मिलती-जुलती ! मोथा (मोथैला) घास की जड़ भी महकती है। गाँड़र घास की जड़, अपनी सुगन्ध के लिए विख्यात है। खस की टट्टियाँ वस्तुत: उसी गाँड़र-घास की जड़ से बनती हैं। उसी जड़ को 'खस' कहते हैं। ठीक उसी प्रकार इस सुगन्धित काली हल्दी को 'कचूर' अथवा 'नरकचूर' कहते हैं। खेत या दुकान में पीली हल्दी के मध्य इसे खोजना बहुत दुष्कर कार्य है। अत: जब भी आवश्यकता हो—किसी पंसारी की दुकान या जड़ी-बूटी भण्डार से 'कचूर' के नाम से माँग लें। पहिचान के लिए भी देखें—ऊपर काली और तोड़ने पर भीतर हल्की पीली आभा दीख पड़ती है। कपूर जैसी सुगन्ध भी आती है। इसे किसी शुभ-मुहूर्त्त में ले आयें, और विधिवत् पूजन करके तान्त्रिक प्रयोग करें। यह धन-सौभाग्य की वृद्धि करने वाली प्रसिद्ध वस्तु है, परन्तु इसका लाभ कभी मिलता हैजब इसकी प्राप्ति और पूजा प्रयोग में मन्त्र तथा मुहूर्त्त का बराबर ध्यान रखा जाय।

कृष्ण-हरिद्रा के तान्त्रिक प्रयोग :

काली हल्दी को 'सेवनीय' तो नहीं, परन्तु 'पूजनीय' रूप में अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। अनेक प्रकार के दुष्प्रभावों का शमन करने में यह अचूक सिद्ध होती है। नीचे इसके कुछ सरल और व्यावहारिक जीवन के लिए लाभकारी प्रयोग लिखे जा रहे हैं।

उन्माद-नाशक तन्त्र :

किसी शुभ दिवस पर पंसारी से काली-हल्दी (नरकचूर) ले आयें। शुद्ध जल में भीगे कपड़े से पोंछकर, इसे कटोरी में रखें और लोबान या धूप की धूनी में शुद्ध कर लें और कपड़े में लपेट कर रख दें।

आवश्यकता पर इसका चूर्ण 1 माशा—ताजे पानी के साथ सेवन करायें तथा एक छोटा टुकड़ा काटकर, उसे धागे में पिरोकर, रोगी के गले या भुजा में धारण करा दें। इस प्रयोग से उन्माद, मिर्गी, पागलपन, भ्रान्ति और अनिद्रा जैसे मानसिक -रोगों में बहुत लाभ होता है।

अदृश्य-बाधा-नाशक तन्त्र :

काली हल्दी के 7 या 9 या 11 दाने बनायें। उन्हें दागे में पिरोकर, धूप, गूगल या लोबान के धुएं में शोधकर पहिन लें। जो व्यक्ति ऐसी माला गले या भुजा में धारण करता है—वह ग्रह-पीड़ा, वायव्य-दोष, अदृश्य-छाया-पीड़ा, टोना-टोटके और नजर आदि से सुरक्षित रहता है।

धन-बर्द्धक तन्त्र :

'गुरुपुष्य-योग' में काली हल्दी को सिन्दूर और धूप-दीप देकर लाल वस्त्र में लपेटकर—एक दो मुद्राओं सहित बक्स में रख दें। इसके प्रभाव से ब़क्स में धन की वृद्धि होती रहेगी।

सौन्दर्य-साधना :

काली हल्दी का चूर्ण दूध में सानकर चेहरे और शरीर पर लेप करने से सौन्दर्य में वृद्धि होती है। दूध के अभाव में पानी अथवा मीठा तेल भी ले सकते हैं।

वशीकरण प्रयोग :

चन्दन की भाँति काली हल्दी का टीका लगायें। यह टीका सम्मोहनकारी होता है। टीके के बीच में अपनी कनिष्ठी अंगुली का रक्त लगाने से प्रभाव और बढ जाता है।

14 नागकेसर

सामान्य परिचय :

यह एक बहुत ही पवित्र और प्रभावशाली वनस्पति है। इसे 'नागकेसर' अथवा 'नागेश्वर' भी कहते हैं। कालीमिर्च के समान गोल, कबाबचीनी की भाति दाने में डण्डी भी लगी हुई, गेरू के रंग का यह गोल फूल घुण्डीनुमा होता है। यह फूल गुच्छों में फूलता है, पकने पर गेरू के रंग का हो जाता है। यद्यपि यह सामान्य वनस्पति है, फिर कहीं-कहीं जङ्गलों में अपने आप उगती है, सामान्यत: प्राप्त नहीं होती। शौकीन लोग इसके पौधे फुलवाड़ी में लगाते हैं। उसी के फूलों की भाँति 'नागकेसर' के गुच्छे होते हैं। इसकी गणना सुगन्धित और पूजा-पाठ के लिए पवित्र पदार्थों में की जाती है। आयुर्वेद की दृष्टि से यह पोषक, सौन्दर्य-बर्द्धक और कीटाणु-नाशक होती है।
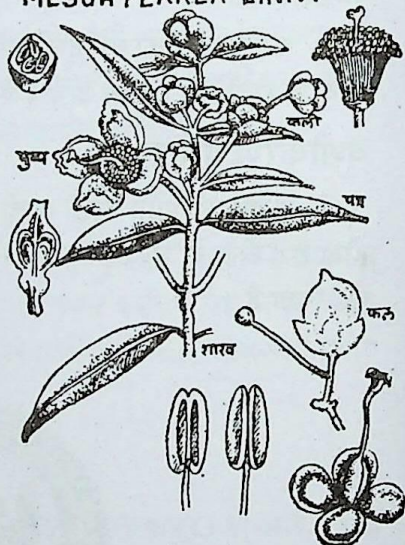
आध्यातम के क्षेत्र में 'नागकेसर' को बहुत उच्च स्थान प्राप्त है। शिवजी को यह बहुत प्रिय है। तान्त्रिक-साधना में भी इसके विविध प्रयोगों का वर्णन मिलता है। यदि पौधे से 'नागकेसर' के फूल प्राप्त न हो रहे हैं, तो पंसारी (बनियों) की दुकान से आसानी से मिल सकते हैं। इसे 'नागकेसर' के नाम से किसी भी जड़ी-बूटी या विक्रेता या पंसारी से माँगे, मिल जायेगी। मूल्य में कुछ मँहगी है। लगभग पाँच रुपये तोले में मिल जाती है। परन्तु यह देख लेना चाहिए कि उसमें कूड़ा-कवाड़, धूल-मिट्टी और पुराने टूटे फूलों का चूरा न मिला हो।

प्रयोग के लिए—साफ, बड़े-बड़े दाने बीनकर किसी डिब्बी में रख लेना चाहिए।

तान्त्रिक-प्रयोग :

'नागकेसर' से अनेक प्रकार के तान्त्रिक प्रयोग सिद्ध किये जाते हैं। यहाँ कुछ अति सरल और शीघ्र प्रभावी प्रयोग-विधियों का उल्लेख किया जा रहा है। वैसे, दैनिक-पूजा में भी इसे प्रयुक्त किया जा सकता है।

समृद्धिकारी शिव-पूजन :

कहीं से स्वच्छ, सुन्दर, अकीक पत्थर से प्रकृत्या निर्मित नर्मदेश्वर शिवलिङ्ग प्राप्त करें। ध्यान रहे कि उसे शिवलिङ्ग में कहीं दरार, चटक, गड्ढ़ा, बिन्दु, भग्नता, छिद्र, विरूपता न हो। उसे अण्डाकार, सुडौल, चमकीला, चिकना होना चाहिए। यदि किसी शिवलिङ्ग पर को विशेष चिह्न हो तो अत्युत्तम है। चिह्न ये हो सकते हैं :—

- **धारालिङ्ग**—लम्बाई में धारियों का घेरा डाले हुए, यह लिंग लहलहाती जल-धारा जैसा प्रतीत होता है।
- **अर्द्धनारीश्वर**—यदि कोई शिवलिङ्ग दो रंग में है, और दो समान भागों में उसका प्राकृतिक वर्ण-विभाजन है, तो वह 'अर्द्ध-नारीश्वर' शिवलिङ्ग कहलाता है। मान्यता है कि ऐसा शिवलिङ्ग शङ्कर-पार्वती के युग्म रूप का प्रतीक होता है।
- **चन्द्रमौलीश्वर**—यदि किसी शिवलिङ्ग में कहीं सफेद रंग का अर्द्ध-चन्द्राकार चिह्न बना है, तो उसे 'चन्द्रमौलीश्वर' कहते हैं। यह दुर्लभ होता है। परन्तु प्रभाव की दृष्टि से इसे परम समर्थ माना जाता है। इसमें कहीं प्रायः अर्द्ध-भाग पर या ऊपर की ओर आधा चन्द्रमा बना होता है, तो बादलों में तैर रहे—चन्द्रमा की छवि से प्राकृतिक रूप में युक्त होता है। चन्द्रमौलि शिवलिङ्ग यदि पारदर्शी हो तो वह बहुत ही उत्तम माना जाता है।
- **चक्र लिङ्ग**—गौर से देखें, शिवलिङ्ग में कहीं 'चक्र' जैसा महीन धारियों से बना गोल अण्डाकार, अँगूठे की रेखाओं से ली गयी छाप जैसा चिह्न दीख पड़े तो उसे 'चक्र-लिङ्ग' कहते हैं। यह भी दुर्लभ होता है।
- **ज्योतिर्लिङ्ग**—किसी भी रंग में प्राप्त निर्दोष. चमकीले शिवलिङ्ग से यदि

लाल रंग की आभा निकल रही हो, तो उसे 'ज्योतिर्लिङ्ग' कहते हैं । यह बहुत ही दुर्लभ माना जाता है ।

● **तिलक लिंग**—यदि किसी शिवलिङ्ग में ऊपर माथे पर लगाये गये 'टीके' जैसा चिह्न हो, तो वह तिलक की भाँति प्रतीत होने से 'तिलक-लिंग' कहलाता है ।

इसी प्रकार और भी कई प्रकार के शिवलिंग होते हैं। उन सबका नामकरण उनके रंग अथवा चिह्न कें आधार पर किया जाता है । अब तक प्राय: 60 प्रकार के शिवलिंग प्रकाश में आ चुके हैं । ये सर्वसुलभ न होकर, प्रारब्ध से ही प्राप्त होते हैं । कोई भी एक शिवलिंग, यदि किसी विशिष्ट श्रेणी का मिल जाये—तो 'अहोभाग्य' समझना चाहिए । ऐसा न मिले तो जो भी सामान्य प्रतिमा मिल जाये, उसे घर ले आयें ।

शिवलगि को किसी सोमवार के दिन, स्नान कराकर कटोरी में श्वेत वस्त्र बिछाकर स्थापित कर दें । पीतल और पत्थर के अरधे (जलहरी) भी प्रयुक्त होते हैं । शिवजी पर सफेद चन्दन, बेलपत्र, धतूरा, मदार के पुष्प, कनेर-पुष्प चढ़ाये जाते हैं । अक्षत का भी विधान है । पुष्प के समय 'नागकेसर' भी अर्पित करें । और कुछ न हो सके तो प्रतिमा को स्नान कराने के बाद उस पर 'नागकेसर' चढ़ायें और धूप-दीप दें । वैसे, चन्दन और अक्षत, पुष्प की व्यवस्था आसानी से हो सकती है । इस प्रकार श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नित्य शिवजी का पूजन करें और प्रतिमा पर नित्य 'नागकेसर' चढ़ायें । यह साधना बहुत लाभकारी होती है । शिवजी आशुतोष हैं । वे अपने भक्तों पर बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं । 'नागकेसर' अर्पित करने वाला साधक—उनकी कृपा का पात्र अवश्य बनता है ।

इस प्रकार 'नागकेसर' द्वारा शिवजी की पूजा से साधक को अभीप्सित भौतिक-समृद्धि प्राप्त होती है ।
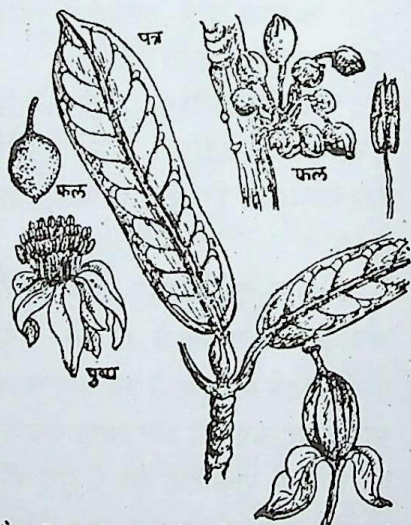
नागकेसर पोटली :

एक नवीन पीत-वस्त्र में नागकेसर, हल्दी, सुपारी, एक सिक्का, ताँबे का टुकड़ा या सिक्का, अक्षत रखकर पोटली बना लें। इस पोटली को शिवजी के सम्मुख रखकर, धूप-दीप से पूजन करके सिद्ध कर लें, फिर आलमारी, तिजौरी, भण्डार में कहीं भी रख दें। यह परम समृद्धि-दायक प्रयोग है।

मन्त्र :

'नागकेसर' को प्रत्येक प्रयोग में 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का अखण्ड जप करते रहना चाहिए।

नागकेसर और वशीकरण :

'रविपुष्य-योग' अथवा 'गुरु-पुष्य-योग' या फिर अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में निम्नलिखित घटक (वस्तुएं) एकत्र करके खरल में कूट लें। फिर उसे कपड़छन करके घी में मिलाकर चन्दन जैसा लेप बनालें। यह लेप माथे पर लगाने से चेहरे पर कुछ ऐसी दिव्य आभा उत्पन्न हो जाती है, जो देखने वालों पर वशीकरण का प्रभाव डालती है।

प्रयोज्य वस्तुएं इस प्रकार हैं :—

नागकेसर, चमेली के फूल, कूट, तगर, कुमकुम और घी।

स्मरण रहे कि प्रातः स्नान पूजा से निवृत्त होकर शुद्ध स्थिति में ही यह प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिए, फिर दैनिक-पूजा के समय यह तिलक लगाते रहें। चूँकि तिलक लगाने में बहुत थोड़ी सामग्री लगती है, अतः केवल आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना चाहिए। यह भी हो सकता है कि पहले दिन चूर्ण तैयार करके, कपड़छन करके घी में तर करलें और उसे किसी प्याली या डिब्बी में रख दें, ताकि उस पर कसाव आदि का प्रभाव न पड़े। काँच, स्टील , प्लास्टिक या चीनी, मिट्टी के पात्र में प्रयुक्त करने से तिलक का लेप कई दिनों तक सुरक्षित बना रहता है।

लगातार कुछ दिनों तक नियमित रूप में इस तिलक को लगाते रहने से साधक में वशीकरण की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

15 कमल

सामान्य परिचय :

प्रकृति में सबसे सुन्दर देन 'वनस्पति-जगत्' है, और वनस्पति-जगत की सबसे सुन्दर उपलब्धि है—'फूलों की सृष्टि!' सौन्दर्य, चिताकर्षण, सुगन्ध, वर्णानुभूति, स्पर्श-सुख और विभिन्न औषधीय प्रयोंगों के लिए फूलों का महत्त्व सर्वोपरि है ।

फूल भी कई तरह के होते हैं। वैसे, फूल (पुष्प) शब्द ही सुन्दरता का पर्याय है. परन्तु गुण प्रभाव की दृष्टि से फूलों में अन्तर होता है । सुगन्धित पुष्प भी अपने गन्द-भेद के कारण व्यक्ति की अनुभूति और तज्जन्य प्रभावशीलता में अन्तर उत्पन्न कर देते हैं। आमतौर पर सुलभ, गैंदा, गुलाब, गुलमेंहदी, गुलदाऊदी आदि पुष्प—अपनी नेत्र-रंजक मोहकता के लिए प्रसिद्ध हैं । इनमें (गुलाब में) सुगन्ध भी होती है, लेकिन सिर्फ देशी गुलाब में ! आजकल के प्रचलित कलमी-गुलाब तो मांत्र-कागजी खिलौने होते हैं—निर्गन्ध और प्रभावहीन ! वे केवल अपने आकार से भड़कीले मालूम होते हैं, बस ! प्रयोग-क्षेत्र में उसका कोई मूल्य नहीं है ।

बेला, चमेली, कुन्द, चम्पा आदि पुष्पों में सर्वाधित सुगन्धित और सर्वप्रिय (किन्तु दुर्लभ) केतकी-पुष्प होता है केवड़े का फूल ! इसकी मादक सुगन्ध से साँप भी इसके पेड़ के पास खिंचे चले आते हैं। इसकी सुगन्ध—मोहक, मादक, मधुर, दूरगामी और स्थायी होती है । हिन्दू-धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि भगवान दत्तात्रेय को केतकी-पुष्प (केवड़ा) बहुत प्रिय है । उनकी पूजा में इसका पुष्प अथवा इत्र प्रयुक्त होता है ।

ये समस्त फूल—पौधों, लताओं और बेलों से उत्पन्न होते हैं । किन्तु कुछ ऐसे भी पुष्प हैं, जो पानी में पैदा होते हैं। ऐसे पुष्पों की जल पुष्प, 'जलज' अथवा 'वारिजात' कहा जाता है । जलज-पुष्पों में सर्वोच्च स्थान 'कमल' को प्राप्त है । द्वितीय-स्थान पर कोक (कुमुद) का नाम लिया जाता है । यद्यपि 'कमल और

कुमुद' में पर्याप्त साम्य है, परन्तु इनमें अन्तर तो साम्य से भी अधिक है—रूप, गुण, प्रभाव सभी दृष्टियों से !

भारतीयता का प्रतीक :

'कमल' भारतीय—धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति अध्यात्म और वानस्पतिक-सौन्दर्य का बहु-चर्चित पुष्प है। इसे इन विषयों का सन्देशवाहक भी कहा जाता है। 'कमल' के विषय में कई एक भारतीय-मिथक (पौराणिक-सन्दर्भ) लोक विश्रुत हैं। यथा—

● महाप्रलय (जल-प्लावन) के पश्चात सर्वप्रथम जिस वस्तु की सृष्टि हुई—वह 'कमल' का फूल ही था। सागर-तल (क्षीरसागर) में शेषशायी भगवान विष्णु की नाभि से एक 'कमल-दण्ड' उत्पन्न हुआ, जो जल-सीमा पार करके ऊपर आया। उसमें एक सुन्दर पुष्प 'कली' के रूप में लगा हुआ था। बाह्य वातावरण के स्पर्श से जब वह 'कली' विकसित हुई, (फूल का रूप धारण किया) तो उससे चतुरानन ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। उन पद्मासीन ब्रह्माजी ने संसार की शून्यता मिटाने के लिए सृष्टि-रचना आरम्भ की। सृष्टि रचना का आरम्भ उन्होंने एक पुरुष और नारी की उत्पत्ति से किया। वही, नर-नारी युग्म मनु और शतरूपा के नाम से विख्यात हुए।

● मान्यता है कि 'लक्ष्मीजी' की उत्पत्ति 'कमल' से हुई है, इसी कारण उन्हें 'पद्माजी' भी कहते हैं।

● भगवान विष्णु और लक्ष्मी—दोनों को कमल-पुष्प अति प्रिय हैं। अत: भक्तजन उनकी कृपा के लिए—पूजा में 'कमल, पुष्प' अर्पित करते हैं।

● 'कमल' का पुष्प समृद्धिकारी होता है। यह जहाँ भी रहेगा, लक्ष्मी वहाँ अवश्य वास करेंगी, जैसा कि उन्होंने स्वयं ही भगवान विष्णु को अपने वास-स्थानों के सन्दर्भ बताया है—
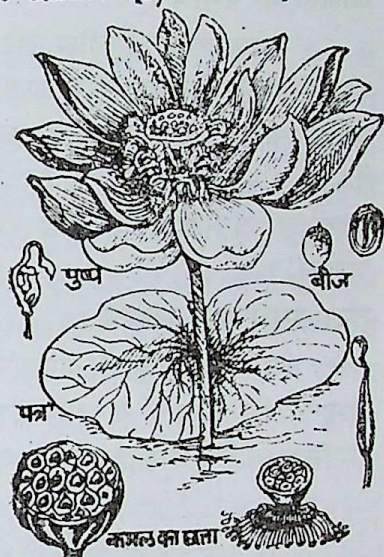
'वसामि पद्मोत्पल शंख मध्ये.......................'

(मैं पद्म, उपल और शंख में वास करती हूँ) ।

सन्दर्भ-प्रतीकों में भी 'कमल' को प्रमुखता प्राप्त है । मुख, नेत्र, हथेली, पादतल आदि की कोमलता, शोभा और अरुण-वर्णीय आभा के प्रसङ्ग में 'कमल' को सर्वाधिक प्रभावशाली उपादान माना जाता है ।

कमल के पर्याय :

'कमल' इतना लोकप्रिय पुष्प है कि उसे अनेक भाषाओं में काव्य और सौन्दर्य के क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता है । अपनी भारतीय भाषाओं में भी उसके विभिन्न नाम हैं । केवल हिन्दी, संस्कृत में ही देखें, तो इसकी अनेक संज्ञा मिलती हैं—अब्ज, अम्बुज, जलज, वारिज, उत्पल, पद्म. कोकनद, सरसीरुह, शतदल, सहस्रदल, तामरस, राजव आदि । परन्तु सर्वाधिक प्रचलित यही नाम है—'कमल' ।

तन्त्र-साधना में कमल :

तन्त्र और आयुर्वेद में 'कमल' के अनेक प्रयोग वर्णित हैं । यह एक दृष्टव्य बिन्दु है कि 'कमल' के अधिकांश प्रयोग सात्त्विक हैं—पुष्टिकर्म प्रधान ! तामसिक-साधना में इसका प्रयोग बहुत कम (नगण्य) बताया गया है ।

16 लवंग
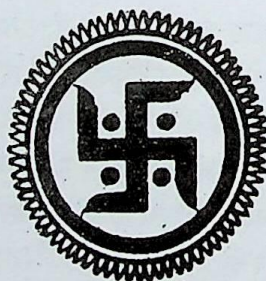
सामान्य परिचय :

दक्षिण-भारत में मलावार-तट और केरल के क्षेत्रों में कई प्रकार के मसालों की प्रचुरता है। कालीमिर्च, जावित्री, इलायची, जायफल, लौंग, दालचीनी, सुपाड़ी आदि के पेड़ वहाँ बहुतायत से पाये जाते हैं। मैंने गोआ, वास्कोडिगामा, पणजी आदि में छोटे-छोटे बच्चों को बन्दरगाह, स्टेशन, पार्क आदि में मसाले की पुड़ियाँ बेचते देखा था। वे एक रुपये का एक पैकेट दे रहे थे। हर पैकेट में कोई एक मसाला—दालचीनी, कालीमिर्च, लौंग, इलायची, जावित्री भरा रहता था मैंने अनुपात निकाला तो पता चला कि एक रुपये का पैकेट अपने , यहाँ (उत्तर-प्रदेश के नगरों—लकनऊ, कानपुर आदि)की अपेक्षा सस्ता है। पैकेट में जो सामान जितनी मात्रा में भरा था, वे यहाँ के से ड्यौढ़े से भी अधिक था। अस्तु वहाँ, विभिन्न प्रकार के मसाले, में जो यहाँ काफी मँहगे बिकते हैं—विपुलता से उपलब्ध थे। इतिहास बताता है कि सोंलहवीं में सदी में जब पुर्त्तगाल-व्यापारी—'वास्कोडिगामा' यहाँ आया तो इन मसालों की सुगन्ध, और विपुलता देखकर मुग्ध हो उठा था। उसके बाद तो—भारत से मसालों की ढुलाई ही प्रारम्भ हो गयी थी। इन मसालों की गुणवत्ता से परिचित होने पर वहाँ से वैज्ञानिक इनसे अनेक प्रकार की दवाएं और प्रसाधन तथा पौष्टिक-खाद्य तैयार करने लगे थे। 'लौंग' भी उन मसालों में एक प्रमुख वस्तु थी।

लवङ्ग अर्थात् लौंग—एक लता का पुष्प है। यह लता अपनी कमनीयता और शोभा-सुगन्ध के लिए प्रसिद्ध है। कवियों ने भी इसे आलम्बन बनाया है :—

'ललित लवङ्ग लते परिशीलन, कोमल मलय समीरे.........

[गीत गोविन्द—जयदेव]

सामान्य प्रयोग :

हमारे देश में—साग-सब्जी और विभिन्न प्रकार के भोजनों में कुछ विशेष

वस्तु डाली जाती है जिन्हें 'मसाला' कहते हैं। हल्दी, धनिया, मिर्चा, जीरा, मेथी, अजवायन आदि मसाला पदार्थ माने जाते हैं। उन्हीं में कुछ विशेष वस्तुओं को मिला देने पर वह खाद्य-सामग्री और स्वादिष्ट बन जाती है। उन विशेष वस्तुओं से सम्मिलत रूप को 'गरम-मसाला' कहते हैं। गरम-मसाले के घटक ये हैं—कालीमिर्च, लौंग, जावित्री, बड़ी इलायची, तेजपात और दालचीनी। जायफल, चित्रक भी आवश्यकतानुसार मिला लिये जाते हैं। इस प्रकार 'लौंग' को गरम-मसाले में प्रमुखता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यह मुख-शोधन के लिए—पान में भी प्रयुक्त होती है।

हमारे देश में पान-सुपाड़ी खाने का पुराना रिवाज है। पान में रखकर खाने के लिए विभिन्न प्रकार के मसाले बनाये जाते हैं। उनमें लौंग भी डाली जाती है। मसाला न होने पर भी, लोग पान में लौंग डाल लेते हैं। जो पान नहीं खाते, केवल सुपाड़ी खाते हैं, वे भी सुपाड़ी, कत्था, लौंग का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः मुख-शोधन के लिए—'लौंग' सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।

तान्त्रिक प्रयोग :

प्रयोग-भेद से 'लौंग' को तन्त्र-शास्त्र में बहुत उपयोगी माना गया है। भूत-प्रेत निवारण, सम्मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, रोगनाश और सुरक्षा जैसे कार्यों में मन्त्र-सिद्ध, 'लौंग' का प्रयोग निश्चित लाभ देता है।

वशीकरण हेतु :

सम्मोहन वशीकरण के लिए किसी 'रविपुष्य' योग के दिन सात लौंग (फूलदार) लेकर, उन्हें धूप-दीप देकर निम्नलिखित मन्त्र द्वारा प्रभावित करें :—

'ॐ ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।'

यह मन्त्र 11 माला (1100) जपना चाहिए। तदुपरान्त इसी मन्त्र से 21आहुतियाँ देकर हवन करें। फिर लौंग को कहीं सुरक्षित रख दें। आवश्यकतानुसार एक 'लौंग' पुनः सात बार वही मन्त्र पढ़कर अभीष्ट व्यक्ति को खिला दें। यह कार्य 'रवि' या 'मङ्गल' के दिन विशेष प्रभावी रहता है। सम्भव हो, तो उसे 3-4 दिन तक वह 'लौंग' खिलाते रहें। यह प्रयोग उस व्यक्ति को आपकी ओर आकृष्ट कर देगा।

(यथासम्भव ऐसे प्रयोग किसी दुष्कामना-दुरभिसन्धि से प्रेरित होकर नहीं करने चाहिएं।)

श्री-समृद्धि के लिए :

धन की लालसा सभी को होती है । यदि आपको अर्थ-संकट ने ग्रस्त कर रखा है, तो उससे त्राण पाने के लिए—आप किसी देवी स्वरूप की उपासना करें और नित्य पूजा के समय, उस देवी की प्रतिमा (यन्त्र या चित्र जो भी उपलब्ध हो) पर 'लौंग' भी अर्पित करें। यह प्रयोग आपकी आर्थिक-स्थिति में भी सन्तोषजनक-परिवर्त्तन कर देगा ।

भुज-युग्म साधना में :

भुजयुग्म अर्थात् 'हाथाजोड़ी' की साधना में 'लौंग' अवश्य चढ़ायें । इसके साथ ही 'महाकालीजी का मन्त्र' प्रतिदिन 7 या 11 माला जपें। ध्यान रहे कि भुजयुग्म में देवी चामुण्डाजी का वास रहता है, जो देवी—महाकालीजी का प्रतिरूप है। अतः महाकालीजी का मन्त्र जपने से उनकी कृपा अवश्य प्राप्त होती है । महाकालीजी का सबसे सरल मन्त्र इस प्रकार है:—

'ॐ किलि किलि स्वाहा ।'

इस मंत्र को नित्य जपें । जप के पूर्व 'हाथाजोड़ी' को लौंग धूप-दीप से पूजा करें, और कोई सिक्का भी चढ़ायें। यह प्रयोग साधक की आर्थिक दशा सुधार देगा ।

(भुजयुग्म-साधना का विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से वर्णित है, देख लें ।)

जुम्बकी साधना में :

हाथाजोड़ी की तरह 'जुम्बकी' अर्थात् 'सियारसिंगी' की साधना में भी 'लौंग' का प्रयोग होता है। कुछ लोग 'हाथाजोड़ी' और 'जुम्बकी'—दोनों को एक साथ रखकर पूजते हैं। कारण कि 'जुम्बकी' में भी चामुण्डा देवी का निवास माना जाता है। जो भी हो, यह निश्चित है कि जुम्बकी साधना में 'लौंग' का प्रयोग अवश्य ही लाभकारी रहता है श्री-समृद्धि पाने के लिए, भयमुक्त होने के लिए, सम्मान और अनुकूलन वातावरण के लिए, वांछित-कार्य में सफलता के लिए—'जुम्बकी-साधना' बहुत लाभकारी होता है । 'लौंग' अर्पित करने से 'जुम्बकी' और अधिक प्रभावशाली हो जाती है ।

प्रेतबाधा-निवारण :

यदि किसी व्यक्ति को भूत-प्रेत की बाधा ने ग्रस्त कर रखा है, तो रविवार

या मङ्गलवार के दिन स्नान करके, धूपबत्ती जला लें, और आसन पर बैठकर सामने किसी कटोरी में 11 'लौंग' रख लें। इन्हें धूपबत्ती के धुएं में शोध लें। उत्तम होगा कि धूपबत्ती पर लोबान भी छिड़क दें, और उसके धुँएं में लौंग का शोधन करें। तत्पश्चात नीचे मन्त्रों में से कोई एक मन्त्र 11 माला जपें। माला में 108 दाने होने चाहिए। मन्त्र-जप के पश्चात माला को—लौंगों से स्पर्श करा दें, फिर उन्हें सुरक्षित रख दें। यह 'लौंग' प्रेत-बाधा निवारक हो जाती हैं। आवश्यकता पड़ने पर 2 लौंग निकालें और सात बार (पुनः वही मन्त्र पढ़कर उन पर फूँक मारें, और किसी कपड़े के सहारे, रोगी की भुजा पर बाँध दें)। वह समस्त प्रकार की वायव्य-बाधाओं से मुक्त हो जायेगा।

● **मन्त्र—** 1. ॐ ह्रींहनुमते रामदूताय नम :।
2. ॐ दुं दुर्गायै नमः।
3. ॐ ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

दन्तपीड़ा-नाशक प्रयोग :

● लौंग चबाने से दन्तपीड़ा नष्ट हो जाती है।

● लौंग का तेल लगाने से दाँत-मसूढ़ों की सारी व्याधियाँ मिट जाती हैं।

● किसी भी मंजन में 'लौंग' पीसकर मिला दें—उसकी गुणवत्ता बढ़ जायेगी।

स्वर-भंग निवारण :

'लौंग' चबाकर चूसते रहें। इसके पूर्व गरम पानी में नमक डालकर गरारा भी करें—कण्ठावरोध दूर हो जायेगा। (कुछ लोगों की धारणा है कि 'लौंग' का प्रयोग—स्वर को भारी कर देता है, यानी आवाज कर्कश (मोटी) हो जाती है।) कुछ लोग कहते हैं कि इसके सेवन से जीभ मोटी हो जाती है। वैसे, यह सब अन्धविश्वास है। 'लौंग' में कीटाणु-नाशक शक्ति होती है। इसका तेल तीक्ष्ण सुगन्ध वाला और उड़नशील होता है, अतः खुला नहीं रखना चाहिए। 'लौंग' का तेल पानी में मिलाकर पीने से चित्त प्रसन्न हो जाता है।

17 कपूर

सामान्य परिचय :

मोम की तरह कोमल, मिश्री की भाँति सफेद, सुगन्ध में प्रिय और तीव्र, मणियों का सामूहिक लेकर पतली पर्त्त में जमा हुआ, लगभग सभी जातियों धर्मों में पूजा-पाठ, मङ्गल-कार्य, आरती-हवन आदि में प्रयुक्त होने वाला 'कपूर' नामक पदार्थ सर्वत्र उपलब्ध रहता है। किसी भी पंसारी, औषधि विक्रेता और सुगन्ध-भण्डार से इसे प्राप्त किया जा सकता है। इसे विविध कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है। बक्स में कपड़ों के साथ, आरती में, दीपक पर दवाओं में पीड़ा और विष-निवारक घटक के रूप में, तन्त्र-मन्त्र आदि में—एक पवित्र उपादान के रूप में 'कपूर' का प्रयोग हम आये दिन करते रहते हैं। इसकी सुगन्ध—तीव्रगामी, तीखी, ठण्डी, मादक, चेतनाकारी और प्रदूषण-नाशक होती है। अपने अद्‌भुत गुणों के बाबजूद यह पदार्थ सस्ता और सुलभ होता है। किसी भी छोटे-बड़े बनिये की दुकान से इसे खरीद सकते हैं।

वस्तुतः 'कपूर' एक पौधे का मानवकृत सुगनिन्धत तत्त्व है। इधर वैज्ञानिक प्रगति ने मिलावट और धौखाधड़ी की भी प्रगति कर दी है। अतः अन्य वस्तुओं की भाँति 'कपूर' भी नकली मिलने लगा है। फिर भी इसकी पहिचान सरलता से हो जाती है। असली 'कपूर' की सुगन्ध तीखी टिकाऊ और ठण्डी होती है, जबकि नकली कपूर में महक, कम, धीमी और अस्थायी होती है। असली 'कपूर' कुछ अधिक समय तक टिकता है, जबकि नकली कपूर थोड़े समय में उड़ (गायब हो) जाता है। वैसे, तो यह उड़नशील होता ही है, परन्तु यदि इसको डिब्बी में ऐसे ढङ्ग से बन्द कर रखा जाय कि हवा का प्रवेश न हो सके तो यह उड़ने नहीं पाता। हवा का स्पर्श ही इसे उड़ा देता है। इसकी सुरक्षा और स्थायित्त्व के लिए इसकी डिब्बी में लोग 5-7 लौंग रख देते हैं। लौंग के साथ रहने पर यह उड़ने से बचा रहता है।

उत्पत्ति की अद्भुत मान्यता :

भारतीय-ज्योतिष में 27 नक्षत्रों की अवस्थिति विभिन्नता तारा समूहों के रूप में आकाश में मानी गयी है। ये सभी नक्षत्र चलायमान हैं और विभिन्न ग्रहों की परिक्रमा करते रहते हैं। देखने में भले ही ये सभी तारे आकाश की नीली चादरों में टँगे हुए से प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि कि ये सब एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र मुक्त इधर-उधर बिखरे हुए हैं। पारस्परिक आकर्षण-शक्ति ने इन्हें एक-दूसरे से बाँध रखा है, इसलिए विश्रंखल न होकर, एक नियमित गति से, नियमित-मार्ग पर चलायमान विभिन्न ग्रहों (तारों) की परक्रिमा करते रहते हैं।

इन सत्ताईस नक्षत्रों में एक नक्षत्र (तारा-समूह) है—स्वाति ! मान्यता है कि जिस समय स्वाति-नक्षत्र आकाश में उदित हो, उस समय की वर्षा (हालांकि स्वाति नक्षत्र की अवधि में ऐसा बहुत कम होता है) का जल (पानी की बूँदें) यदि केले के पौधे पर (पत्तों से उद्गम संधिस्थल में) गिरें, तो उससे 'कपूर' की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार उक्त (स्वाति-नक्षत्र की वर्षा का जल) साँप के मुँह में गिरे—तो महा भयंकर विष बन जाती है। सीपी (शुक्ति) के मुख में गिरे तो 'मोती' को जन्म देती है।

कहा नहीं जा सकता है कि इस धारणा का आधार क्या है, परन्तु यथार्थ यह है कि आज के युग में प्राप्त मोती, विष और कपूर की रचना—स्वाँति बूँद से न होकर, मानवा-कृत उपायों से होती है। बाँस की कोठी से स्वाति-बूँद के द्वारा 'बंसलोचन' की उत्पत्ति भी ऐसी ही मिथकीय कहानी लगती है। आज ये सभी वस्तुएं विभिन्न घटकों के संयोग से मानव द्वारा तैयार की जा रही है। अस्तु, 'कपूर' जिसे कर्पूर, काफूर और कैम्फर भी कहते हैं, उसी रूप में ग्राह्य और प्रयोज्य है, जैसा वह बाजार में मिलता है। तान्त्रिक प्रयोगों के लिए—वह निश्चित रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

कपूर के विभिन्न तान्त्रिक प्रयोग :

'तन्त्र-साधना' में सात्त्विक कार्यों के लिए—'कपूर' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विभिन्न प्रकार के लेप और तिलक तैयार करने में इसका प्रयोग होता है। आरती-दीप में भी यह बहुत शुभ और प्रभावशाली माना जाता है। प्रयोग-भेद से इसको ज्वरादि-रोगों के निवारण हेतु औषधीय घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ कुछ विशिष्टि तान्त्रिक-क्रियाओं में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाल रहे हैं :—

धन-वृद्धि की अद्भुत मान्यता :

श्री-यन्त्र, हाथाजोड़ी, दक्षिणावर्त्ती-शंख, दत्त-यन्त्र, जुम्बुकी, श्रीफल, एकाक्षी-नारियल आदि की साधना में (जो भी आप कर रहे हों, पुष्पादि के साथ) कपूर भी अर्पित करें । इसमें उक्त तान्त्रिक वस्तुओं की प्रभावशीलता बढ़ जाती है ।

मस्तक-पीड़ा में :

कपूर को सूँघते रहें, किसी तेल या गो-घृत में घिसकर, माथे पर लगायें—पीड़ा शान्त हो जायेगी ।

दुर्गन्ध और कीटाणु-निवारण के लिए :

कहीं दुर्गन्ध फैल रही हो अथवा किसी प्रकार के कीटाणु फैल गये हों, वहाँ कपूर का चूर्ण छिड़क देने से वातावरण शुद्ध सुगन्धित और स्फूर्तिदायक हो जाता है ।

सौभाग्य-बर्द्धन हेतु :

घर में पूजा के समय—इष्टदेव की आरती में कपूर का प्रयोग करें । यह अत्यधिक ज्वलनशील पदार्थ है । यह जहाँ भी जलता है—समस्त प्रकार के वायव्य दोष समाप्त हो जाते हैं।

हवन-सामग्री में :

तामसी-साधना को छोड़कर साधनाओं के हवन में 'कपूर' का प्रयोग—उसके प्रभाव को बढ़ा देता है ।

मृतात्माओं के आह्वान में :

आकर्षण प्रयोगों के अन्तर्गत, किसी मृतात्माओं के बुलाने के लिए—कपूर का धुँआ और कपूर के दीप का प्रकाश, विशेष प्रभावी होता है । ध्यान रहे कि प्रेतात्मा-ग्रस्त व्यक्ति को कपूर नहीं देना चाहिए, अन्यथा उसका कष्ट बढ़ जाता है ।

यन्त्र-निर्माण की स्याही :

आध्यात्मिक साधना में मन्त्र और तन्त्र की तरह यन्त्र को भी बहुत महत्त्व दिया गया है । यन्त्र प्रायः भोजपत्र पर लिखे जाते हैं। ताम्रपत्र पर भी यन्त्रों की रचना की जाती है । उत्कीर्णित यन्त्र स्थायी और सुरक्षित होते हैं । यन्त्र-रचना (लेखन) में विभिन्न प्रकार के पदार्थ मसि-रूप में (स्याही के तौर पर) इस्तेमाल किये जाते

हैं। अष्टगन्ध एक ऐसा ही मिश्रण है, जो यन्त्र-रचना के लिए सर्वमान्य स्याही है। किन्तु प्रयोग भेद से अन्य प्रकार की स्याहियाँ (मसि) भी तैयार की जाती है। कितने ही प्रयोंगों में रक्त, वसा, वनस्पति-विशेष का रस, दूध, घी आदि को मसिवत् प्रयुक्त करने का विधान मिलता है। परन्तु वह काली-स्याही—सामान्य बाजारू स्याही न होकर—'कर्पूर-कज्जल' निर्मित स्याही होती है। इसके लिए—'कपूर' को जलाकर उसके ऊपर कोई शुद्ध पात्र ढँक दिया जाता है। उत्तम होगा कि नीचे कटोरी में या मिट्टी की नयी दियाली में 'कपूर' का टुकड़ा रखें, उसे जला दें और ऊपर से कोई मिट्टी की ही कोई नयी कटोरी (परई) ओंधा दें। चाँदी या धातु की कटोरी भी (पीतल की नहीं) प्रयुक्त हो सकती है। इस तरह 'कपूर' की लौ का धुँआ— ऊपर वाली कटोरी में जम जायेगा। बाद में उसे निकाल कर साफ कागज की पुड़िया में रख लें। यह काजल विभिन्न प्रकार के यन्त्रों की रचना (लेखन) में काम आता है। शनि-यन्त्र तथा यक्षिणी-भैरवी आदि की साधना में इस 'काजल' को वरीयता दी जाती है।

हस्त रेखा-मर्मज्ञ भी इसी काजल को हस्त-चित्र प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। सामान्य रूप में यह काजल आँखों में लगाने पर विभिन्न नेत्र-दोषों को शान्त कर देता है।

'कर्पूर-कज्जल' जब भी बनायें, कोई शुभ-मुहूर्त्त अवश्य रहे। रविपुष्य, गुरुपुष्य, दीपावली की रात्रि, विजयादशमी जैसे योग इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं।

18 सिंदूर

सामान्य परिचय :

'सिंदूर' से सभी परिचित हैं । हिन्दू-समाज के तो घर-घर में इसका प्रयोग होता है । महिलाएं इसे सौभाग्य (सुहाग-पति की जीवितावस्था) का प्रतीक मानकर, माथे और सिर पर (माँग में) धारण करती हैं । कुमारी कन्याएं माँग नहीं भरतीं । माँग भरने (माँग में सिन्दूर लगाने) का अधिकार केवल विवाहिता स्त्री (सधवा) को होता है । वैधव्य की स्थिति में पति से वंचित होने के साथ-साथ वह पति के इस गौरवशाली-चिह्न (सिंदूर धारण—माँग भरना तथा बिन्दी लगाना) से भी वंचित हो जाती है ।

किन्तु सिंदूर को महिलाओं के लिए सौभाग्य-चिह्न होने के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी महत्त्व प्राप्त होता है । लगभग सभी देवी-देवताओं पर यह अर्पित किया जाता है । सीताजी, राधाजी, पार्वतीजी और दुर्गाजी तथा उनके समस्त प्रतिरूप सिंदूर से अलंकृत किये जाते हैं । गणेशजी और हनुमानजी को भी सिंदूर अर्पित किया जाता है ।

सिंदूर दो प्रकार का होता है—लाल और पीला ! महिलाओं द्वारा प्रायः लाल सिंदूर ही प्रयोग किया जाता है, परन्तु पूजन-विधान में पीले सिंदूर को विशेष महत्त्व प्राप्त है ।

'सिंदूर' विष भी है, और अमृत भी ! प्रयोग-भेद से ये दोनों तरह के (पोषक और मारक) प्रभाव दिखाता है । अब यह बात अलग है कि प्रयोग किया जाने वाला सिंदूर 'असली' है या नकली ! नकली सिंदूर का प्रभाव—आशा के प्रतिरूप भी हो सकता है । वह चाहे तन्त्र से सम्बन्धित हो, चाहे आयुर्वेद से ! श्रृंगार के लिए भी शुद्ध सिंदूर ही ठीक रहता है । मिलावटी चीजें बाद में हानिकारक हो जाती है ।

'सिंदूर' से अनेक प्रकार के घाव-पूरक मरहम आदि बनाये जाते हैं। बन्दर-कुत्ता जैसे जानवरों के काट लेने पर घाव भरने के लिए सिंदूर का प्रयोग किया जाता है।

तान्त्रिक-प्रयोग :

● मङ्गलवार के दिन, शुद्ध घी में सिंदूर मिलाकर वह लेप यदि हनुमानजी की प्रतिमा पर चढ़ाया (लगाया) जाये, तो इससे वे भक्त पर प्रसन्न होते हैं।

● प्रत्येक पूजा में—गौरी, गणेश, दुर्गा, पार्वती, सीता, लक्ष्मी सरस्वती आदि देवियों (उनके चित्र, यन्त्र, प्रतिमा) पर सिंदूर अवश्य अर्पित किया जाता है। ध्यान रहे कि देवी-प्रतिमा पर श्वेत चन्दन का लेप वर्जित है, उन्हें केवल सिंदूर ही चढ़ाना चाहिए। कहीं-कहीं प्रयोग-भेद से दुर्गाजी तथा उनके प्रतिरूपों पर लाल चन्दन का लेप अर्पित करने का विधान है।

● सिंदूर धनदायक भी होता है।

● हाथाजोड़ी पर सिंदूर चढ़ाकर पूजा करने से वह समृद्धि और सम्मोहन प्रदान करती है।

● सियारसिंगी पर चढ़ाया गया, सिंदूर भी वशीकरण और सम्मोहन का प्रभाव उत्पन्न करता है।

● हनुमानजी की प्रतिमा पर चढ़ाया हुआ सिंदूर, माथे पर टीका रूप में लगाने से ओज-तेज की वृद्धि होती है।

● गौरी (पार्वती) की प्रतिमा पर चढ़ाये गये सिंदूर को धारण करने वाली महिलाएं सौभाग्य-सम्पन्न होती हैं। उसे वे पार्वतीजी का प्रसाद मानकर, उनकी कृपा की आकांक्षा रखती हैं।

● आयुर्वेद में सिंदूर के शोधन का विधान है। शोधित सिंदूर अनेक रोग-विकार दूर करता है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति सादा (नित्य प्रयोग में काम आने वाला) सिंदूर खा ले (चाट ले) तो वह अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है।

● सिंदूर भार में अधिक होता है, अतः पूजा या औषधि के लिए—हल्का सिंदूर कभी नहीं लेना चाहिए। वह नकली होने के कारण वांछित प्रभाव नहीं दे पाता।

19 श्रीफल

सामान्य परिचय :

विभिन्न ग्रन्थों में बेल-फल, नारियल और अनार को 'श्रीफल' कहा गया है। परन्तु तन्त्र-शास्त्र में जिस विशिष्ट फल को 'श्रीफल' की संज्ञा दी गयी है, वह एक बहुत ही छोटा फल है। देखने में यह बड़ी इलायची जैसा, रङ्ग में सफेद इलायची जैसा, रूपाकार में नारियल के फल जैसा होता है। इसके फल पर रेशे (जटाएं) होते हैं। टहनी की ओर इस पर भी तीन बिन्दु पाये जाते हैं। इस तरह यह नारियल का संक्षिप्त-संस्करण कहा जा सकता है। अन्तर केवल आकार और रंग का है। यह सफेद, हल्का पीलापन लिये ठीक छोटी इलायची के रंग का होता है। बनावट बिल्कुल नारियल जैसी होती है। इसे मिनी 'कोकोनट' कह सकते हैं, अस्तु, 'श्रीफल' नामक यह फल भी समुद्रतट की उपज है और तान्त्रिक वस्तुएं बेचने वाले के पास आसानी से, बहुत कम दामों में मिल जाता है।

देखने में छोटा, उपयोग में नगण्य, मूल्यवत्ता में सामान्य, परन्तु प्रभाव में अद्‌भुत और गुणवत्ता में असामान्य यह फल यदि विधिवत् प्रयुक्त किया जाय तो चमत्कारी प्रभाव दिखाता है।

तान्त्रिक प्रयोग :

इसे किसी शुभ दिवस पर घर ले आयें और धो-पौंछकर एकान्त पवित्र स्थान में कपड़े में लपेट कर रख दें। 'गुरुपुष्य' अथवा अन्य किसी अति शुभ मुहूर्त्त में इसे लाल कपड़े पर रखें। (स्नान पूजा के बाद पूरी पवित्रता से यह साधना करें) सिंदूर, कपूर, लौंग, छोटी इलायची चढ़ायें। धूप, दीप दें और कोई मुद्रा (सिक्का) अर्पित करें! तदुपरान्त 7 या 9 या 11 माला का मन्त्र जप करें। फिर उसे किसी कटोरी में (कपड़े सहित) रख दें। उसकी नित्यप्रति देव-प्रतिमा की भाँति सिंदूर, धूप, दीप से पूजा करते रहें। कभी-कभी सिक्के भी चढ़ाते रहें। 'श्रीफल' की यह साधना द्रव्यदायी होती है। ऐसा विधिवत् पूजित 'श्रीफल' जहाँ भी रहता

है—वहाँ लक्ष्मीजी की पूर्ण कृपा रहती है । धन, धान्य, सम्पदा की वृद्धि के लिए यह प्रयोग बहुत ही सरल और प्रभावशाली है । इसका भी मन्त्र वही है—

'ॐ श्रीं श्रियै नमः ।'

दुकान में रखें :

नवरात्रि के अवसर पर किसी दिन या फिर अष्टमी के दिन, अपनी दुकान, प्रतिष्ठान, कार्यालय—जहाँ भी लेन-देन या कोई व्यवसाय होता हो, यह मन्त्र-सिद्ध 'श्रीफल' किसी सुरक्षित स्थान पर रख दें । उसे नित्य धूप दीप दें और कोई सिक्का चढ़ाकर 7 बार मन्त्र-जप द्वारा स्तुति करें ।

यह प्रयोग उस प्रतिष्ठान-दुकान की आर्थिक स्थिति में लाभकारी परिवर्त्तन कर देगा ।

बक्स में रखें :

उपरोक्त विधि से 'श्रीफल' को यदि बक्स मेंरख लिया जाय तो उसमें मुद्रायें बढ़ने लगती हैं । किन्तु यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि उस बढ़ती हुई राशि से कभी पैसे निकालें नहीं । निकालने से वृद्धि रुक जाती है । सामान्य खर्चे के लिए अलग पैसे रखें रहें परन्तु बक्स में रखे श्रीफल के पैसे कभी न लें, बल्कि उस पर कुछ न कुछ चढ़ाते रहें । यह प्रयोग अनुभूत है और चमत्कारी प्रभाव दिखाता है ।

गोलक में रखें :

यदि आपको गोलक से प्रेम है, तो उसमें बड़ा छेद बनाकर पूजित शोधित 'श्रीफल' रख दें, तदुपरान्त गोलक का वह बड़ा छेद बन्द कर दें—केवल सिक्का डालने भर की दरार रह जाये ।

गोलक को नित्य धूप-दीप दें और सुविधानुसार उसमें पैसे भी डालते रहें । इस प्रयोग से वह अपेक्षाकृत कम समय में ही भर जायेगी ।

अन्न भण्डार में :

अनाज के गोदाम (अन्न भण्डार) में 'श्रीफल' रखने से वह कभी रिक्त नहीं होता, उसमें सदैव अन्न का ढ़ेर लगा रहता है । यदि कीड़े, मकोडों, चूहों और आग, पानी से सुरक्षित रखा जा सके तो अन्न का संग्रह सर्वश्रेष्ठ होता है—

धान्यानां संग्रहोः राजनुत्तम सर्व संग्रहात् ।
वुभुक्तं हि मुखे रत्नं न कुर्यात प्राण धारणाम् ॥

20 नागदमन

सामान्य परिचय :

'वनस्पति-जगत्' में असंख्य पेड़-पौधे और लताएं प्राप्त होती हैं। सबका विवरण बता सकने वाला आज तक कोई भी ग्रन्थ—संसार की किसी भी भाषा में नहीं रचा जा सका। कितने ही पौधे तो ऐसे हैं, जिन्हें हम साधारण मानकर उपेक्षित किये रहते हैं, जबकि तथाकथित तुच्छ और अनुपयोगी पौधे अपने में स्वर्ण के समान मूल्यवान, अमृत के समान आरोग्य-गुण, और वज्र के समान सुरक्षात्मक-शक्ति सँजोये रहते हैं। किन्तु अज्ञानवश, हम उनसे परिचित नहीं हैं, इसलिए उनका कोई उपयोग नहीं कर पाते।

'नागदमन' का एक ऐसा पौधा है, जो अपनी हरियाली और दण्डाकार संरचना के लिए शोभायमान घोषित है, फलत: उसे हम शौक पूरा करने के लिए गमलों में लगा लेते हैं। इसके पत्ते छोटे तनिक लम्बाई में गोल गहरे हरे रंग के होते हैं। यह पौधा अपनी सीध में ऊपर की ओर बढ़ता है। इसकी शाखाएं भी ऊर्ध्वमुखी होती हैं। इसका एक मात्र आकर्षण इसकी हरीतिमा है, जो बारह महीने समान रहती है। कहींसे भी उखाड़कर इस पौधे की शाखा लगायी जा सकती है। यह एक सस्ता और सर्वसुलभ पौधा है। बहुत से लोग इसे बाढ़ के रूप में अपनी फुलवाड़ी या पार्क के किनारे-किनारे लगा देते हैं।
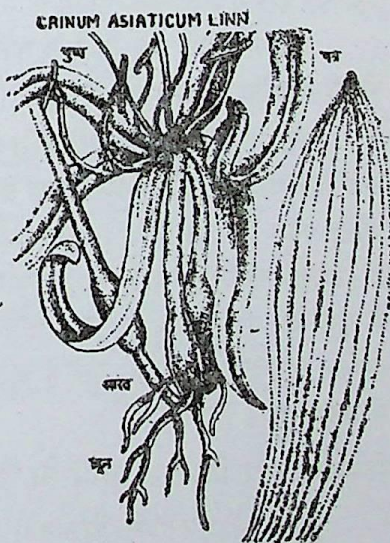
पर्यायवाची शब्द :

मान्यता है कि जहाँ यह पौधा होगा, वहाँ साँप नहीं आयेगा। साँप इसके वर्ण से, इसकी गन्ध से, और इसके अदृश्य प्रभाव से आतंकित रहता है। सर्प का दमन करने की शक्ति से सम्पन्न होने के आधार पर ही इसे यह नाम 'नागदमन' दिया गया है। पर्यायवाची के रूप में इसके लिए ये शब्द भी प्रचलित हैं :—

नागपुष्पी, नागदमनी, सर्पदमन, वनकुमारी, महायोगेश्वरी आदि।

तान्त्रिक प्रयोग :

'रविपुष्य' योग के दिन 'नागदमनी की जड़' विधिवत् ले आयें। उसे धोकर साफ करें, फिर अन्य वानस्पतिक प्रयोग की भाँति इसकी भी पूजा करें। पूजा के समय अपने इष्टदेव का मन्त्र 11 माला जपें। यदि ऐसा कोई मन्त्र आपके पास नहीं है, तो शिवजी को स्वामी मानकर, उनकी स्तुति में शिव-मन्त्र का जप करें। शिव मन्त्र का सरलतम रूप यह है :—

'ॐ नमः शिवाय।'

ग्यारह माला मन्त्र जपकर सामान्य हवन-सामग्री से हवन करें। आहुति देते समय भी उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते रहें। हवन में कम से कम 51 अथवा 108 आहुतियाँ देनी चाहिएं। आहुति के पश्चात् हवनकुण्ड के धुँएं में इसे शोध लें, और फिर कहीं सुरक्षित रख दें। तान्त्रिक प्रयोग के लिए परम उपयोगी होती है।

नागदमन की जड़ के कुछ तान्त्रिक-प्रयोग इस प्रकार बताये गये हैं :—

मेधा-शक्ति बढ़ाने के लिए :

किसी-किसी व्यक्ति की बुद्धि मन्द होती है। वह न तो किसी बात को दूर तक सोच पाता है, न देर तक याद रख सकता है। उसकी स्मरण-शक्ति और धारणा-शक्ति बहुत क्षीण होती है। ऐसे लोगों को नागदमन का प्रयोग लाभकारी होता है। किसी 'रविपुष्य' के दिन—'नागदमनी की जड़' लायें, उसे धोकर—धूप, दीप से पूजा करें। फिर '**ऐं ह्रीं नमः**' मन्त्र का 11 माला जप करके, वह जड़ किसी ताबीज (कवच) के सहारे गले में पहिन लें। यह प्रयोग बुद्धि का विकास करने में बहुत सक्षम होता है।

सम्मान और विजय-प्राप्ति के लिए :

समाज में अपने वर्ग-विभाग में, संस्था और दल में, कहीं भी मान-सम्मान पाने की लालसा हो तो 'नागदमन की जड़' उपर्युक्त विधि से धारण करें। सर्वत्र

सम्मान और विजय-प्राप्ति की स्थिति बनी रहेगी । प्रतियोगिता, युद्ध, विवाद, प्रतिस्पर्धा आदि में यह प्रयोग साधक की पूरी रक्षा करता है ।

ग्रह-दोष निवारण :

उपर्युक्त विधि से 'सर्पदमन की जड़' धारण करने से समस्त प्रकार के ग्रहदोष तथा भूत-प्रेतादि की बाधा समाप्त हो जाती है ।

धन-समृद्धि के लिए :

घर में 'नागदमन का पौधा' गमले में 'रविपुष्य' के दिन लाकर लगायें । साथ ही, पूर्वोक्त विधि से इसकी जड़ धारण करें । धनाभाव दूर हो जायेगा ।

21 उदुम्बर

सामान्य परिचय :

भारतीय-वनस्पतियों में क्षीरद-वृक्षों को विशेष महत्त्व दिया गया है। यहाँ तक कि क्षीरद-घासें भी महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं। 'क्षीरद' शब्द का अर्थ है—दूध देने वाली (क्षीर=दूध, द =देने वाली) अर्थात् वह वनस्पति (पेड़-पौधा), जिससे दूध निकलता हो। ऐसी वनस्पतियों (क्षीरद-वर्ग—दूधिया पौधों) में प्रमुख है—बरगद, पीपल, कटहल, बड़हल, पाकर, गूलर, मदार और सेंहुड़ आदि। इनमें 'गूलर' नामक वृक्ष एक सर्वसुलभ पेड़ है, जो कहीं भी देखा जा सकता है।

आम नीम की तरह अधिक तो नहीं, फिर भी हर गाँव या उसके आसपास कहीं न कहीं एकाध गूलर का पेड़ अवश्य प्राप्त होता है। यह भारी भरकम होता है। इसकी लकड़ी जल में सड़ती नहीं, अतः कुँआ बनवाने वाले लोग ईंटों की दीवार खड़ी करने के पूर्व आधार रूप में नींव के स्थान पर गूलर की लकड़ी का एक गोल पहिया जैसा बिठा देते हैं। उसी के ऊपर ईंटें जमाकर गोलाकार दीवार खड़ी की जाती है। इस प्रकार नींव में पड़ी गूलर की वह लकड़ी दशाब्दियों तक पानी में पड़ी रहनेपर भी सड़ती नहीं। इसी गूलर वृक्ष को 'उदुम्बर' कहते हैं।

'गूलर' में झरबेरी के बराबर फल लगते हैं जो क्रमशः बढ़ते हुए नीबू के बराबर तक हो जाते हैं। ये फल कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर लाल हो जाते हैं। पके फल मीठे, पौष्टिक, ठण्डे और पाचक होते हैं। किन्तु एक कठिनाई भी होती है। प्रायः गूलर के फलों में छेद करके छोटे-छोटे उड़ने वाले पतिंगे (भुनगे) घुस जाते हैं, जो उसका रस चूसा करते हैं। अतः गूलर खाने वाले को यह सावधानी बरतनी पड़ती है कि वे छेददार फल न लें। और कोई भी फल (गूलर) खाने के पहिले उसे तोड़कर भीतर भली-भाँति देख लें कि कहींकोई पतिंगा तो नहीं बैठा है ? कच्चे गूलर में पतिंगे नहीं होते। इसको सब्जी तथा अनेक अन्य खाद्य पदार्थों के रूप में (पकौड़ी आदि) लोग बड़े चाव से खाते हैं।

तान्त्रिक प्रयोग :

'गूलर' को तन्त्र-साधना में महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है। यहाँ उसके कुछ प्रयोग लिखे जा रहे हैं :—

दत्त-साधना में :

'गूलर' की लकड़ी हवन में प्रयुक्त होती है। दत्त-साधना (भगवान दत्तात्रेय की उपासना) में गूलर-वृक्ष के नीचे जप करने तथा हवन में 'गूलर' की लकड़ी करने का विधान है।

धन-बर्द्धक प्रयोग :

'रविपुष्य' के दिन, प्रातः शुभ-मुहूर्त्त में, पूर्व निमंत्रण के अनुसार उदुम्बर-मूल (गूलर की जड़) ले आयें। घर लाकर इसे विधिवत् स्नान करायें और धूप, दीप से उसकी पूजा करें। पूजनोपरान्त निम्नलिखित मन्त्र का 11 माला जप करें :—

'ॐ ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।'

जप के पश्चात यही मन्त्र पढ़ते हुए, 21 आहुतियाँ देकर हवन करें और एक ब्राह्मण बालक या बालिका को भोजन-दक्षिणा दें। तदुपरान्त उक्त जड़ को लाल कपड़े में बाँधकर, वही मन्त्र पढ़ते हुए बक्स या तिजौरी में रख दें। ध्यान रहे कि जड़ की पूजा करते समय उस पर कोई सिक्का भी चढ़ाना चाहिए। कपड़े में लपेटते समय उस पर—सिंदूर, कपूर, लौंग इलायची, सिक्का आदि सभी वस्तुएं ज्यों की त्यों चढ़ी रहनी चाहिए। इन्हें हटायें नहीं, कपड़े में लपेट दें।

यह पोटली चाहे पूजा स्थल में रखें और नित्य धूप दीप दें, चाहे बक्स, तिजौरी आदि में रखें। यह पोटली—जिस घर में रहेगी, वहाँ धन सम्पत्ति की निरन्तर वृद्धि होती रहेगी। सुविधा-सामर्थ्य हो तो उस जड़ को कपड़े में लपेटकर—चाँदी या ताबीज में भरकर रखें। यह ताबीज पहिनने या पास रखने से साधक को कभी धनाभाव नहीं होता। यह बहुत ही सरल और सहज सुकर प्रयोग है। आस्थावान् जन विधिवत् इसकी साधना से लाभ उठा सकते हैं।

सन्तान-सुख :

जिन घरों में सन्तान न होती हो या होकर जीवित न रहती हो, या रोगी रहती हो, या उपद्रवी स्वभाव की हो, तो गूलर की जड़ उपर्युक्त विधि से लाकर पूजेंऔर

घर में कहीं सुरक्षित रखकर नित्य उसे धूप , दीप देते हुए, सन्तान-मुख की याचना करें । प्रत्येक कार्य के लिए उक्त मन्त्र का जप आवश्यक है । इस प्रयोग से सन्तान-सुख अवश्य प्राप्त होता है ।

प्रेम और सम्मोहन के लिए :

समाज में उपेक्षित, प्रणय में असफल, यश और प्रतिष्ठा तथा स्नेह के इच्छुक जन (यदि वास्तव में स्वभाव-चरित्र की दृष्टि से सौम्य और सभ्य, शिष्ट है) इस जड़ी के द्वारा निश्चित रूप में लाभान्वित हो सकते हैं । विधि वही पूर्वोक्त है—'रविपुष्य' योग में 'उदुम्बर की जड़' लायें । और उसकी पूजा करें, तदुपरान्त उसे चन्दन की भाँति घिसें और वह लेप माथे पर लगायें । ऐसा लेप (माथे पर लगाया गया तिलक) व्यक्ति में कुछ ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर देता है कि वह समाज-पड़ौस में सर्वत्र प्रेम, प्रशंसा और स्नेह का पात्र हो जाता है ।

सुख-शान्ति के लिए :

पूर्व-वर्णित विधि से प्राप्त और पूजित 'उदुम्बर-मूल' को घर में देव-प्रतिमा की भाँति स्थापित करें (कहीं रख दें) और नित्य धूप-दीप से, मन्त्र-जप से पूजन करते रहें ।

यह प्रयोग घर में सर्व प्रकार से मङ्गलदायी होता है । सुख-शान्ति, शुचिता और समृद्धि के लिए यह बहुत सहज और सर्वसाध्य प्रयोग है । इसे ग्रामीण-जन, सामान्य गृहस्थ भी सरलता से कर सकते हैं।

दत्त-साधना :

भगवान दत्तात्रेय को त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का संयुक्त रूप माना जाता है । दत्त भगवान की उपासना बहुत जल्दी और निश्चित फल देती है । इसके लिए या तो किसी रविपुष्य के दिन गूलर वृक्ष की जड़ ले आयें, या उत्तम यही होगा कि किसी 'रविपुष्य' योग के दिन से, गूलर-वृक्ष के नीचे जाकर, वहाँ दत्त-मन्त्र का जप करें । जप के पूर्व वह स्थान बनालें । स्वच्छतापूर्वक, लिपे-पुते स्थान में बैठें । मुख ठीक पेड़ के सामने हो, यह भी ध्यान रहे—साधक को उत्तर का पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए । दत्त-यन्त्र या दत्त भगवान की प्रतिमा का पूजन करें । तदुपरान्त यह मन्त्र जपें— **'ॐ द्रां दत्तात्रेय नमः ।'** पूजा में प्रतिमा पर श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प और केतकी गन्ध (केवड़ा का इत्र) भी चढ़ायें । इक्कीस दिनों की नियमित साधना से चमत्कारी लाभ होता है ।

22 पीपल

सामान्य परिचय :

पीपल एक सर्वज्ञात, सर्वत्र सुलभ, बिना किसी पोषण के स्वयं ही विशालकाय हो जाने में समर्थ और हिन्दू-धर्म में चिर-प्राचीन काल से पूज्य एक ऐसा वृक्ष है, जिसके साथ शताधिक मान्यताएं, विश्वास, अंधविश्वास, लोक-कथाएं और पूजन-विधान प्रचलित है ।

यह वृक्ष बरगद और पाकर-गूलर की जाति का है। किन्तु उसके फल सबसे छोटे होते हैं। यह फल मूँगफली के छोटे दाने के बराबर होता है, जो बरगद, गूलर की भाँति बीजों से भरा होता है। ये बीज राई के दाने के आकार में होते हैं। परन्तु उससे उत्पन्न वृक्ष विशालतम रूप धारण करके, सैकड़ों वर्षों तक खड़ा रहता है।

पीपल की छाया बरगद से कम होती है, फिर भी इसके पत्ते अधिक सुन्दर कोमल और चंचल होते हैं। नाममात्रा की वायु में भी ये दोलायमान हो उठते हैं। अन्य किसी पेड़ के पत्ते इस तरह नहीं हिलते-काँपते जैसे पीपल के पत्ते थरथराते हुए हिलते रहते हैं । 'रामायण' में—राजा दशरथ की मन:स्थिति के वर्णन में दोलयामान पीपल-पत्र की उपमा दी गयी है :—

'पीपर पात सरिस मन डोला ।'

बसन्त ऋतु में पीपल की नयी कोपलें (धानी रङ्ग की चमक से) बहुत ही शोभायमान लगती हैं । बाद में वह हरा, रंग और फिर गहरा हरा हो जाता है ।

पीपल के पत्ते जानवरों को चारे के रूप में खिलाये जाते हैं, और लकड़ी ईंधन के काम आती है। वैसे, हिन्दू धर्म की मान्यता है कि पीपल का वृक्ष (डाल, पत्ते, टहनी, तना कुछ भी) काटना नहीं चाहिए। ब्राह्मणों में इस वर्जना को विशेष मान्यता प्राप्त है । यद्यपि अपने-आप गिरे हुए, टूटे-फूटे वृक्ष की लकड़ी ईंधन के काम में लायी जाती है। तथापि यह वृक्ष पवित्र माना जाता है, और इसे तोड़ने, काटने, जलाने वाले लोग, भय, शङ्का, वर्जना, अमङ्गल की दुष्कामना से प्रभावित रहते हैं।

जहाँ तक काष्ठोपयोग की बात है, पीपलकी लकड़ी किसी भी इमारती काम

या फर्नीचर के लिए अनुकूल नहीं होती । होली या भट्टी में जलाने के अलावा, इसे लोग चूल्हे में जलाते भी भय, शङ्का में पड़ जाते हैं । कारण कि यह पेड़ 'देव-वृक्ष' कहा जाता है । इस पर देवताओं का वास माना जाता है । और देवता चाहे न भी रहते हों, परन्तु इस वृक्ष पर भूत-प्रेत पिशाच और बैताल आदि का तथा डाकिनी-शाकिनी का निवास अवश्य माना जाता है ।'ब्रह्मराक्षस' नाम का प्रेतियोनि प्राणी (बरमराक्षस) प्रचलित मान्यता के अनुसार पीपल के पेड़ पर ही निवास करता है ।

कारण चाहे जो भी हो, चाहे कोई वैज्ञानिक दुष्प्रभाव हो अथवा यही सब आध्यात्मिक निषेध हो, पीपल वृक्ष के नीचे रात में कोई सोता नहीं । पीपल तले लघु-शङ्का और अन्य कोई अशुद्ध, घृणित, अपवित्र कार्य करना मना है । ऐसा कई बार सुनने-पढ़ने में आया है कि अमुक व्यक्ति ने पीपल के पेड़-तले लघुशङ्का करदी और उसी शाम घर पहुँचते-पहुँचते वह गंभीर रूप में किसी अक्षात् बीमारी का शिकार हो गया । ऐसे लोग ज्वर, उन्मत्तता, भ्रम-मूर्च्छा और ऐसी ही अन्य मनो-व्याधियों से ग्रस्त हो जाते हैं । पीपल का वृक्ष पवित्र, पूज्य, देव-स्थान माना जाता है, साथ ही—प्रेतों का निवास भी होने के कारण यह आतंक का पर्याप्त कहा जाता है । शुभ और अशुभ दोनों तरह के कृत्य इसकी छाया में सम्पादित होते हैं।

पहाड़ी पीपल
FICUS ARNOTTIANA MIQ.
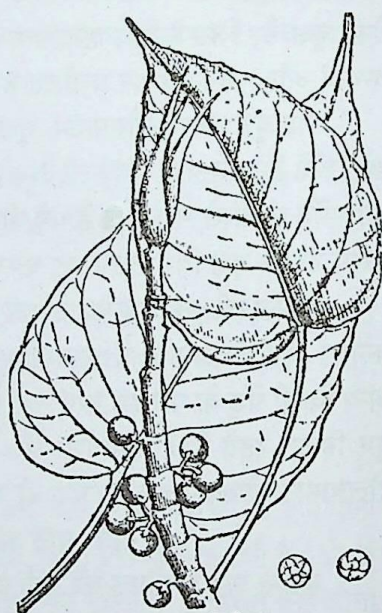
यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, पुराण-कथा आदि के लिए पीपल की छाया श्रेष्ठ मानी गयी है । इसी तरह पीपल के नीचे मृतक का दशगात्र-विधान (क्रिया-कर्म, पिण्डदान आदि) पूरा करने का प्रचलन है । हिन्दू-धर्म में क्रिया-कर्म के पश्चात्, मृतात्मा की शान्ति के लिए, पीपल के वृक्ष में घट बाँधने और सायंकाल उस पर दीपक जलाने का नियय है । इस विवेचन से सिद्ध होता है कि 'पीपल' वृक्ष को हमारे हिन्दू समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और यह असंदिग्ध रूप में पवित्रता का प्रतीक माना जाता है ।

तन्त्र-साधना में पीपल का महत्त्व :

नवग्रहों में 'शनि' सर्वाधिक पीड़क होता है। शास्त्रों में लिखा है शनि-पीड़ा से त्राण पाने के लिए 'पीपल' पर जल चढ़ाना चाहिए। यही नहीं, शनिवार की संध्या को पीपल के नीचे बैठकर दीपक जलाना और पश्चिमाभिमुख होकर शनि की पूजा करना भी परम लाभकारी होता है।

भूत-प्रेत, भैरव आदि की साधना :

देव-वर्ग से इतर प्रेतयोनि वाली शक्तियों-वैताल, भैरव आदि तथा यक्षिणी-साधना के लिए पीपल की छाया, पीपल के पास (जड़ के पास) बैठना, अनिवार्य होता है।

और कुछ न करें, पीपल के वृक्ष पर नित्य, स्नानोपरान्त एक लोटा जल चढ़ाते रहें, तो भी उसमें निवास करने वाली अदृश्य आत्मा (प्रेतयोनि) तृप्त होकर सहायक बन जाती है।

देवोपासना और पीपल :

कितने ही मन्दिर पीपल के वृक्ष के पास बने होते हैं। कभी-कभी मन्दिर के पास पीपल स्वतः उग आता है। इसके विपरीत कभी-कभी श्रद्धालु-जन पीपल के नीचे जड़के पास स्थान बनाकर, कुछ मूर्त्तियाँ स्थापित कर देते हैं। इस तरह पीपल वृक्ष और मूर्त्तियाँ—दोनों की पूजा होने लगती है।

यह भी एक बहु अनुभूत सत्त्य है कि पीपल की सेवा करने वाले व्यक्ति किसी न किसी चमत्कारिक ढङ्ग से लाभान्वित अवश्य हो जाते हैं।

दरिद्र-निवारण के लिए :

पीपल-वृक्ष के नीचे शिव-प्रतिमा स्थापित करके, नित्य उस पर जल चढ़ायें और पूजन-अर्चन करें। कम से कम 5 या 11 माला मन्त्र का जप (ॐ नमः शिवाय) करें। कुछ दिन की नियमित साधना से परिणाम सामने आ जाता है। प्रतिमा को धूप-दीप से शाम को भी पूजना चाहिए, दिन में तो चन्दन, पुष्प और अक्षत आदि का प्रयोग होता ही है।

हनुमानजी के दर्शन :

पीपल वृक्ष के नीचे नियमित रूप से बैठकर, हनुमानजी का पूजन, स्तवन, मङ्गवार का व्रत, रात्रि में एकान्त-शयन, ब्रह्मचर्य और मन्त्र का नियमित-जप (ॐ ह्रीं हनुमते रामदूताय नमः) करने से हनुमानजी के दर्शन हो जाते हैं। परन्तु इस साधना में साधक को आस्थावान्, साहसी, ब्रह्मचारी, संयमी और सात्त्विक होना चाहिए। हनुमानजी स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष में आकर दर्शन अवश्य देते हैं।

23 बरगद

सामान्य परिचय :

भारतीय-संस्कृति में 'बरगद' सबसे दीर्घायु, विशालकाय स्वयं जीवी और घनी छाया वाला विशालकाय वृक्ष है । यद्यपि यह भी पीपल-पाकर वर्ग का वृक्ष है, तथापि इसमें अन्य वृक्षों से कई बातों क़ा मौलिक और बहुत बड़ा अन्तर है ।

'बरगद' अथवा 'वट' हिन्दू-संस्कृति में पूज्य वृक्ष है । इनके नाम पर सुहागिनी स्त्रियां 'वट-सावित्री' पूजन करती हैं । यह व्रत उनके लिए अक्षय-सौभाग्यदायी माना जाता है । और कई प्रकार के पूजन-विधान तथा तान्त्रिक-प्रयोग वट-वृक्ष के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं।

'बरगद' की लकड़ी सिवा जलाने के और किसी काम नहीं आती । इसके पत्तों की छाया बहुत घनी होती है । पत्तों को लोग पशुओं को चारे के रूप में भी देते हैं । इसके पत्ते कड़े-मजबूत होते हैं, अतः गाँवों के नाई-बारी इनसे दोना-पत्तल भी बनाते हैं।

बरगद का पौधा आसानी से तैयार हो जाता है । इसकी हरी डाल काटकर, कहीं भी गाढ़ दें, वृक्ष के रूप में पर्याप्त छाया और लकड़ी देने के लिए तैयार हो जायेगी ।

यह भी बहुत पवित्र वृक्ष है । मान्यता है कि भगवान कृष्ण (विष्णु) बाल-रूप में बरगद के पत्ता पर, अकेले लेटे, क्षीरसागर की तलहटी में, अपना अँगूठा चूसते रहते हैं । महाप्रलय के पश्चात् जब समस्त पृथ्वी-मण्डल जलमय हो
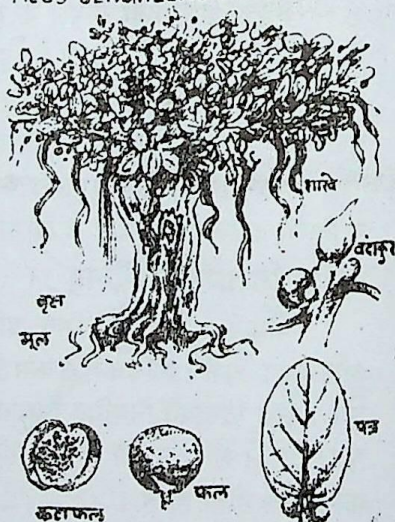
जाता है—भगवान विष्णु का विराट रूप, एक छोटे शिशु के रूप में 'वट-पत्र' पर लेटा, सागरतल में शयन करता रहता है। 'वट-वृक्ष' का नाश नहीं होता, कहीं न कहीं वह अवश्य पाया जाता है। कुछ ऐसे भी 'वट-वृक्ष' हैं, जो अनादि काल से पृथ्वी पर उपस्थित माने जाते हैं। इन्हें 'कल्पवृक्ष' या 'अक्षयवट' कहते हैं। प्रयाग और उज्जैन में तो ऐसे एक-एक 'वट-वृक्ष' आज भी खड़े हैं, जिन्हें स्थानीय जनता ही नहीं, इतिहास और संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान् भी बहुत प्राचीन होने के नाते 'अक्षयवट' कहते हैं। इसके पत्ते पर श्रीकृष्ण के शयन का, उनकी बाल-सुलभ छवि का वर्णन इस श्लोक में देखें :—

करारविन्देन पदारविन्दं,
मुखार विन्देन विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं,
बालंमुकुन्दं मनसाऽस्मरामि॥

तान्त्रिक प्रयोग :

● रविपुष्य के दिन बरगद की जटा (बरोह) ले आयें। उसे सुखाकर कूट लें और कपड़छन करके रख लें। यह चूर्ण दाँतों पर मलने से अनेक प्रकार के मुख-रोग दूर हो जाते हैं।

● वट की जटा (हरी-ताजी) लाकर, उसको दाँतून की भाँति प्रयोग करें। समस्त दन्त-रोग मिट जायेंगे।

● त्यागी, सन्यासी, साधु, वनवासी, विरक्त बनने के पूर्व, गृहस्थाश्रम का परित्याग करने के पश्चात् वटक्षीर (बरगद का दूध) बालों में लगाकर जटाएं बनाते हैं। तपस्या के लिए सिर पर जटाजूट का होना भी एक नियम है।

धन-वृद्धि के लिए :

बरगद के फल टूट-टूट कर गिरते रहते हैं। उनमें से भी कभी-कभी कोई बीज उग आता है। 'पीपल' की अपेक्षा बरगद के पेड़ कम उगते हैं। यदि आपको किसी बरगद के तले, उसकी छाया के क्षेत्र में वट-बीज में उत्पन्न कोई पौधा दीख जाये (हालांकि यह बहुत दुर्लभ संयोग है—अलभ्य जैसा, फिर भी यदि प्राप्त हो ही जाये) तो उसे रविपुष्य के दिन विधिवत् ले आये और उसकी पूजा करके, कहीं

दरवाजे या फुलवाड़ी में लगा दें। यह पौधा जिस गतिसे बढ़ेगा, तद्नुसार ही साधक की समस्या भी बढ़ती जायेगी।

बरगद का बाँदा :

'बाँदा प्रकरण' में इसका उल्लेख किया जा चुका है। अत: पुनरुक्ति से बचने के लिए दुबारा नहीं लिखा जा रहा है।

अन्य प्रयोग :

बरगद के कई तान्त्रिक प्रयोग और भी हैं। वर्णन-क्रम से उनका उल्लेख यथा-स्थान किया गया है। आवश्यकतानुसार देख सकते हैं।

24 विजया

सामान्य परिचय :

विजया से सभी लोग परिचित हैं। प्रचलित भाषा में इसे 'भाँग' कहते हैं। यह एक मादक वनस्पति है। नशे के शौकीन लोग इसका दैनिक-सेवन करते हैं। यह मादक होकर भी सौम्य और स्मृति-बर्द्धक होती है। भगवान शिव को यह इतनी अधिक प्रिय है कि वे अपनी पत्नी भवानी जैसा अनुराग-स्नेह इस पर भी रखते हैं। इसी कारण इसे 'भङ्ग भवानी' भी कहा जाता है। देवतावर्ग इसे व्यंग्योक्ति में 'शम्भुप्रिया' भी कहता है। इसके सर्वाङ्ग में मादकता होती है, और लोग पत्तियों को चबाकर (पीसकर गोली या शर्बत के रूप में भी सेवन करके) नशे में हो जाते हैं। अधिक मात्रा में सेवन कर लेने पर यह निद्रा, अवसन्नता और जड़ता उत्पन्न करती है, और व्यक्ति अपनी चेतना गँवा बैठता है। यों, सामान्य रूप में इसको कुछ विशेष घटकों के साथ (बादाम, कालीमिर्च, सौंफ, इलायची, मुनक्का, गुलाब-केसर और दूध शक्कर) पीसकर थोड़ी मात्रा में पीने से बहुत लाभ होता है। यह मेधाबर्द्धक, पौष्टिक और ओज-प्रदायक पेय है। किन्तु यह तभी लाभकारी होता है, जब व्यक्ति को खाने पीने की सुविधा हो। दूध, घी, मलाई, भ्रमण, वायु-सेवन, व्यायाम, शान्ति और सत्सङ्ग यह उन्हें सुलभ हों—उन्हीं को भाँग का सेवन हितकर होता है। आज की अभावग्रस्त परिस्थितियों जबकि नमक, रोटियों का भी जुगाड़ कठिन ही है, कोई भी नशा हानिकारक है। अतः भाँग का प्रयोग बहुत सावधानी से अपनी सामर्थ्य को देखते हुए ही करना चाहिए। केवल नशे मे 'मस्त' हो जाने के लिए भाँग का (किसी भी मादक पदार्थ का) सेवन उचित नहीं है।

अस्तु, तान्त्रिक विधि से यदि भाँग का सेवन किया जाय तो उसका चमत्कारी प्रभाव सामने आता है। ऐसे प्रयोग में, यदि पूर्व-वर्णित विधि से भाँग प्राप्त की जाय, तो निश्चित लाभ होता है। चूँकि यह सरकारी प्रबन्ध में है, अतः ठेके (दुकान) से किसी शुभ दिन में लाकर शेष नियमों की पूर्त्ति घर में कर लेनी चाहिए।

भाँग के कुछ विशिष्ट तान्त्रिक प्रयोग (विजयाकल्प) यहाँ प्रस्तुत हैं। जिज्ञासु और आस्थावान् साधक इनसे लाभ उठा सकते हैं।

● चैत के पूरे महीने भर यदि भाँग की पत्ती स्वल्प मात्रा में घटकों (सौंफ, बादाम, मुनक्का, कालीमिर्च, इलायची, गुलाब, केसर और दूध शक्कर) के साथ पीसकर एक गिलास पेय पी लिया जाय, तो मस्तिष्क का नाड़ी संस्थान स्वस्थ-सबल हो जाता है। किन्तु इस प्रयोग में मादकता-प्राप्ति की लालसा से भाँग की मात्रा अधिक नहीं कर देना चाहिए। वरन् औषधि के रूप में केवल 1 माशा (8 रत्ती भाँग) का प्रयोग लाभकारी होता है। मेधा-शक्ति को बढ़ाने (धारण, चिन्तन, कल्पना,, स्मरण-शक्ति की वृद्धि) में यह प्रयोग बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध होता है।
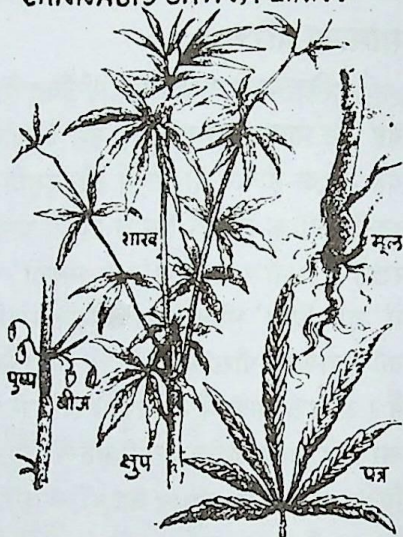
● उपरोक्त विधि से यदि कोई व्यक्ति पूरे वैसाख महीने भर भाँग का सेवन करे, तो उसका रक्त और स्नायु-संस्थान विष के दुष्प्रभाव से मुक्त रहता है। खाने-पीने वाली वस्तुओं की विषाक्तता, इस प्रयोग से नष्ट हो जाती है।

● जेठ के महीने भर विजया-पेय (उपरोक्त घटकों के साथ बनाया गया शर्बत) नित्य सेवन करने से (प्रातः सूर्योदय के पूर्व ही) शारीरिक कान्ति, सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

● आषाढ़ के महीने में विजया का सेवन केश-कल्प कर देता है। इस प्रयोग में विजया को पेय रूप में न लेकर, चित्रक के साथ चूर्ण रूप में प्रयोग करना चाहिए।

● शिवलिङ्गी के बीज और विजया पूरे सावनभर घोटकर पीने से (चूर्ण भी लिया जा सकता है, किन्तु पेय में ताजगी रहती है) शरीर पुष्ट होता है और शक्ति में वृद्धि होती है।

● रुद्रदन्ती और भाँग को एक साथ पीसकर (पेय, गोली या चूर्ण के रूप में) पूरे भादों के महीनों भर सेवन करने से मन-मस्तिष्क को शान्ति मिलती है। मानसिक-तनाव दूर करने में यह प्रयोग बहुत लाभकारी रहता है।

● विजया की पत्ती और ज्योतिष्मती (मालकाँगनी) एक साथ पीसकर कुआर के महीने में सेवन करने से शरीर नीरोग, कान्तियुक्त और बलिष्ठ हो जाता है।

● ठीक यही प्रभाव (कुआर महीना वाला) तब भी होता है, यदि कार्तिक के महीने भर भाँग की पत्ती को (सम्भव हो, तो समस्त घटकों के साथ ही) बकरी के ताजे दूध के साथ सेवन किया जाय।

● अगहन के महीने में विजया-चूर्ण—घी, शक्कर के साथ नित्य सेवन करने से नेत्रों की सुरक्षा होती है। अनेक प्रकार के नेत्र रोगों में यह प्रयोग लाभकारी रहता है।

● पौष के महीने में काले-तिल और विजया-पत्ती का सेवन करने से दृष्टि-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है।

● माघ के महीने में नागरमोथा की जड़ के चूर्ण में, विजया-चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए। इस प्रयोग से शरीर पुष्ट होकर, बल और कान्ति की वृद्धि होती है।

● फाल्गुन के पूरे महीने आँवले के चूर्ण अथवा रस के साथ भाँग का सेवन (दोनों को एक में मिलाकर) करने से शरीर का सम्पूर्ण नाड़ी-जाल (स्नायु-तन्त्र) सतेज हो जाता है। वात और रक्त के समस्त अवरोध दूर हो जाते हैं। इस प्रकार व्यक्ति में अद्‌भुत स्फूर्ति आ जाती है। शरीर की सक्रियता और गतिशीलता बढ़ाने में यह प्रयोग चमत्कारी लाभ देता है।

● बारह महीनों तक विभिन्न अनुमानों के साथ विजया का सेवन 'विजया-कल्प' कहलाता है। यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति पूरे वर्ष तक इन अनुपात भेदों के आधार पर, नियमित रूप से, विजया-कल्प का प्रयोग करें, तो वह निश्चय ही सबल, तन-मन का स्वामी बन सकता है।

25 सहदेवी

सामान्य परिचय :

'सहदेवी' अथवा 'सहदेई' एक सुलभ वनस्पति है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका पौधा आसानी से मिल जाता है। आज्ञानवश लोग इसे सामान्य घासफूस की श्रेणी में मानते हैं, किन्तु तान्त्रिक दृष्टि से यह बहुत ही लाभप्रद और अद्‌भुत गुणों से सम्पन्न अमूल्य वनस्पति है। तन्त्र-शास्त्र में इसकी महिमा का वखान करते हुए अनेक प्रकार के लोकोपकारी प्रयोग वर्णित हैं। निम्नांकित विधि से 'सहदेवी' का पौधा प्राप्त करके उसके प्रभाव का लाभ उठाया जा सकता है :—

सर्वप्रथम किसी 'रविपुष्य-योग' में सहदेवी का पौधा घर ले आयें। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि पूर्व-वर्णित विधि के अनुसार पौधे को एक दिन पहले (शनिवार की शाम को) विधिवत निमंत्रण दे आना चाहिए। फिर दूसरे दिन प्रातः (रविपुष्य-योग में) पौधे के समक्ष जाकर उस पर मन्त्र पढ़ते हुए जल चढ़ायें। तत्पश्चात मन्त्र पढ़ते हुए ही उसे समूचा उखाड़ लें, और घर ले आयें। घर लाकर, उसे देव-प्रतिमा की भाँति पंचामृत से स्नान कराकर, शुद्ध आसन पर रखें और धूप-दीप आदि से पूजा करके निम्नलिखित मन्त्र को 21 बार जपते हुए, पौधे की स्तुति करें।

प्रातः काल पौधे के पास जाने से लेकर, पूजा समाप्ति तक साधक को सर्वथा मौन रहना चाहिए। यथा-संभव एकान्त में भी रहें, कारण कि दूसरे की उपस्थिति से—तन्मयता भङ्ग हो जाती है। साथ ही लोगों की अशुभ-दृष्टि से साधना में विघ्न भी आ जाता है। अस्तु मन्त्र जप के बाद पौधे को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाना चाहिए। चाहे तान्त्रिक प्रयोग के लिए हो, चाहे आयुर्वेदिक (औषधीय) प्रयोग के लिए। यदि पौधे को विधिवत् (उपरोक्त तान्त्रिक पद्धति से, रविपुष्य योग में) प्राप्त किया जाये, तो निश्चय ही उसमें चमत्कारी और अचूक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। पंचामृत से स्नान कराकर पूजनोपरान्त पौधे को शक्ति-सम्पन्न बनाने के लिए इक्कीस बार जपने का मन्त्र यह है :—

मन्त्र—'ॐ नमो रूपावतीं सर्वप्रोतेति श्री सर्वजनरंजनी सर्वलोकवशकरणी सर्वसुखरंजनी महामाईल घोल थी कुरु कुरु स्वाहा ।'

इस प्रकार तन्त्रोक्त विधि से प्राप्त और पूजित सहदेवी का पौधा अनेक दिव्य गुणों से सम्पन्न हो जाता है। प्रयोग-भेद से उससे बहुविधि लाभ उठाया जा सकता है। ऐसा मन्त्राभिषिक्त पौधा धन-सम्पत्तिदायक होता है। किसी भी मुहूर्त में उस पौधे के निम्न प्रभावों की अनुभूति की जा सकती है :—

● पौधे की जड़ को लाल वस्त्र में लपेट कर तिजोरी, अन्न भण्डार, आभूषण-पेटिका तथा अन्य किसी सम्पत्ति के साथ रखने से उसमें वृद्धि होने लगती है।

जड़ को गङ्गाजल में घिसकर, नेत्रों में अंजन की भाँति लगाने से दृष्टि से सम्मोहक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

● यदि कोई स्त्री प्रसव-वेदना से व्याकुल हो, तो उस जड़ को तैल में घिसकर, स्त्री की जननेन्द्रिय पर लेप करने, अथवा जड़ को लाल धागे के सहारे कमर में बाँध देने से, वह पीड़ा-मुक्त हो जाती है।

● तन्त्र-सिद्ध सहदेवी का समूचा पौधा (पंचाङ्ग) सुखाकर, कूटकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण को गो-घृत के साथ मासिक-धर्म के पाँच दिन पूर्व से, पाँच दिन बाद तक नियमित रूप से सेवन करने वाली स्त्री को—सन्तान-लाभ होता है।

● बच्चों के गले में 'सहदेवी' की जड़ को ताबीज की तरह पहिनाने से कण्ठमाला-रोग दूर हो जाता है।

● तन्त्र-सिद्ध सहदेवी-पौधे के पंचाङ्ग को पीसकर, उसको माथे पर तिलक की भाँति लगाने से मान-प्रभाव की वृद्धि होती है। सामाजिक-सम्मान प्राप्त करने में यह बहुत लाभदायक रहता है।

● और कुछ न करके, यदि उस मन्त्राभिषिक्त पौधे का प्रतिदिन-पूजन दर्शन किया जाय, तो भी बहुत कल्याणकारी होता है।

26 अपामार्ग (ओंगा)

सामान्य परिचय :

अपामार्ग (ओंगा) एस सर्वसुलभ पौधा है, यह बरसात में उगता है, और जाड़े में पकता है । वैसे, इसकी जड़ बारहों महीने हरी रहती है, और इस तरह का पौधा कई वर्ष तक बराबर पनपता रहता है । इसे 'लटजीरा' या 'चिरचिटा' भी कहते हैं। तन्त्र-ग्रन्थों और आयुर्वेद में इसे 'अपामार्ग' कहा गया है। यह दो जातियों में मिलता है—लाल और सफेद ! इसके प्रयोग से दैनिक-जीवन की कितनी ही आवश्यकताएं पूरी हो सकती है । तन्त्र-शास्त्र में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि किसी 'रविपुष्य-योग' अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में इसका पौधा लाकर उसे विधिवत् शुद्ध करके रख लें । फिर उसका आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है । यथा—

अपामार्ग (ओंगा)

● लाल अपामार्ग की डण्डी की दाँतून यदि नियमित रूप से 6 महीने तक लगातार की जाय, तो वाणी में अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हो जाता है । ऐसे व्यक्ति को वाचा-सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।

● लाल ओंगा की जड़ को जलाकर भस्म बना लें । भस्म नित्य प्रति गाय के दूध में सेवन करने वाले दम्पत्ति को सन्तान प्राप्त होती है ।

● इसके बीजों को साफ करके चावल निकालें। उन चावलों को दूध में पकाकर खीर बनायें। यह खीर क्षुधा-स्तम्भन करती है। जो व्यक्ति इस खीर को खायेगा—वह भूख का अनुभव नहीं करेगा।

● श्वेत अपामार्ग की जड़ पास में रखने से—लाभ, समृद्धि और कल्याण की प्राप्ति होती है।

● श्वेत-पौधे की जड़ का तिलक माथे पर लगाने वाला व्यक्ति सम्मोहन-प्रभाव से युक्त हो जाता है।

● इस जड़ को दीपक की भाँति जलाकर, उसकी लौ पर किसी छोटे बच्चे का ध्यान केन्द्रित कराया, जाय तो उस बच्चे को बत्ती की लौ में वांछित दृश्य दिखायी पड़ेंगे। मुस्लिम-तन्त्र में वर्णित हाजरात (दिव्य-दृष्टि) में भी इसका प्रयोग होता है।

● इस जड़ का लेप करने से शरीर पर शस्त्राघात का भय नहीं रहता।

● छोटे से (चार अंगुल) टुकड़े के रूप में, इसे जननेन्द्रिय में रखने से प्रसूता की वेदना समाप्त होकर, शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।

● श्वेत अपामार्ग की पत्तियों को पीसकर, तुरन्त लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है। साथ ही, इसकी लकड़ी को भी सुँघाते हुए, शरीर पर फेंकनी चाहिए।

● इसकी ढाई पत्तियों को गुड़ में मिलाकर, दो दिन तक—दोनों समय खाने वाला व्यक्ति ज्वर-मुक्त हो जाता है।

● श्वेत अपामार्ग और बहेड़ा की जड़ (दोनों ही रविपुष्य-योग में प्राप्त की गयी हों), एक पोटली में बाँधकर, जिसके घर में (शत्रु के घर में) रख दी जाय, तो उस परिवार में मानसिक-अशान्ति (उच्चाटन) उत्पन्न हो जाती है।

● ओंगा का समूचा पौधा (पंचाङ्ग) जलाकर भस्म बनालें। यह भस्म दाँतों पर मलने से अनेक प्रकार के दन्त-रोग, मुख-रोग और जिह्वा-कण्ठ के विकार दूर हो जाते हैं।

27 मुण्डी

सामान्य परिचय :

'मुण्डी' एक सुलभ वनस्पति है, इसका पौधा 5 हजार फ़ीट ऊँचाई तक प्राय: समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में बहुतायत से उत्पन्न होता है। धान, गेहूँ, जौ आदि रवी में उत्पन्न होने वाले अन्न के खेतों के अतिरिक्त शरद ऋतु में छोटे-छोटे जलाशयों के सूख जाने पर उन जलाशयों में भी पाया जाता है।

इसका पौधा ऊँचा होता है। इसकी शाखाएं पर्याप्त दृढ़ और मुड़ी हुई सी होती है। इसके पत्तों की लम्बाई 3 इंच तक होती है। और पत्तों के किनारे दाँतेदार होते हैं। अधिकतम आधा इंच तक व्यास तक फैलने वाली इसकी घुण्डियाँ गुच्छे के रूप में फैलती हैं। इसे 'गोरखमुण्डी' भी कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि मुण्डी के तान्त्रिक-प्रयोगों का अनुसंधान परम-सिद्ध औघड़ सन्त—'गुरु गोरखनाथ' ने किया था। इसलिए परवर्ती आचार्यों नें इसको 'मुण्डी' से 'गोरखमुण्डी' नाम प्रसिद्ध कर दिया। जो भी हो, यह अनुभूत सत्य है कि मुण्डी में अनेक औषधीय और तांत्रिक गुण है। तन्त्रशास्त्र का निर्देश है कि यदि वानस्पतिक नियमों के अनुसार विधिवत् निमंत्रण देकर, इसका पौधा लगया जाय, और उसे मन्त्र द्वारा सिद्ध कर
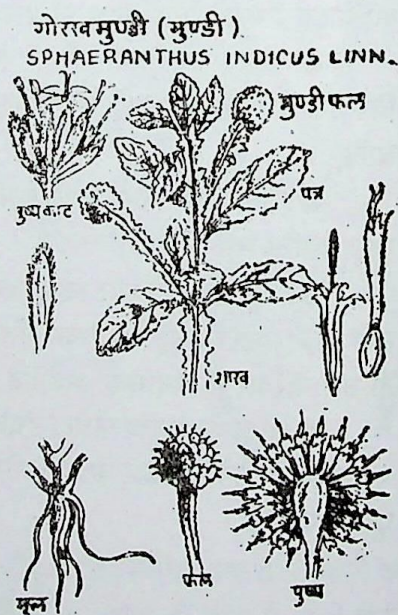
लिया जाय, तो उसके प्रयोग से चमत्कारी–परिणाम दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ प्रयोग इस प्रकार हें :—

● तन्त्र–सिद्ध 'मुण्डी' के पौधे को सुखाकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण का शहद के साथ प्रातःसायं दैनिक–सेवन करना साधक को बौद्धिक–दृष्टि से सबल और बाग्मी बना देता है। स्मरण, धारणा, चिन्तन और वक्तृत्व शक्ति की वृद्धि के लिए यह अचूक प्रयोग है।

● उपरोक्त चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से स्वास्थ्य और शारीरिक बल प्राप्त होता है।

● इस चूर्ण को रातभर पानी में भिगोयें, और प्रातः–सायं छानकर, उसी जल से सिर धोयें। केश–कल्प का यह उत्तम प्रयोग है।

● हरे पौधे के रस की मालिश करने से शरीर पीड़ा मिट जाती है।

● उपरोक्त चूर्ण और जौ के आटे का मिश्रण करके, इसे मट्ठे (छाछ) में सानकर रोटी बनायें, और गो के घृत के साथ वह रोटी खायें। कुछ दिनों तक लगातार यह प्रयोग करते रहने से बुढ़ापे पर अवरोध लगकर, शरीर, स्वस्थ, सबल और कान्तिपूर्ण हो जाता है।

गोरखमुण्डी

28 बहेड़ा

सामान्य परिचय :

'बहेड़ा' एक जङ्गली फल है । इसका पेड़—महुआ, बादाम, चिरौंजी का पेड़ जैसा भारी-भरकम होता हैं । पत्ते भी लगभग वैसे, ही काफी बड़े होते हैं । 'बहेड़ा 'का आकार महुआ के फल गुल्लू जैसा होता है । गुल्लू में एक विशेषता यह होती है कि इसके किसी फल में एक, किसी में दो और किसी में तीन बीज निकलते हैं, और इस कारण फल का आकार भी छोटा-बड़ा होता है । परन्तु बहेड़े में यह अन्तर नहीं होता । 'बहेड़े' लगभग समान आकार के होते हैं ।

आयुर्वेद में 'त्रिफला' एक प्रसिद्ध योग है । उसके तीन फलों (तीन घटकों) में आँवला, हरड़ के साथ तीसरा फल 'बहेड़ा' ही है । बहेड़े के आयुर्वेद में वर्णित गुणों की संख्या विपुल है । यह प्रयोग-भेद से अनेक विकारों को शान्त करता है ।

यहाँ हमारा विषय आयुर्वेद नहीं, 'तन्त्र-शास्त्र' है । वैसे, तन्त्र और आयुर्वेद में घनिष्ट सम्बन्ध है, फिर भी दोनों के क्षेत्र और प्रयोग-प्रकारों में पर्याप्त अन्तर है। यहाँ बहेड़े के कुछ तान्त्रिक
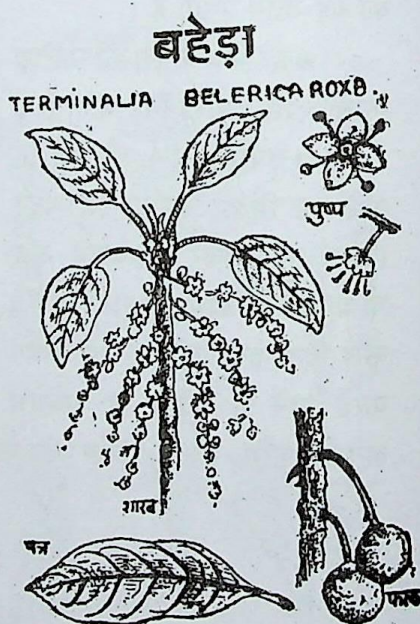
प्रयोग लिखे जा रहे हैं। परन्तु यह तथ्य स्मरण रखने योग्य है कि 'बहेड़ा' अथवा कोई भी वनस्पति (वस्तु) यदि तान्त्रिक प्रयोग के लिए लानी (प्राप्त करनी) है, तो उसके लाने की विधि और मुहूर्त्त का ध्यान अवश्य रखना होगा। मुहूर्त्त और विधि की उपेक्षा करके किया गया प्रयोग सफल नहीं होता। विधि का महत्त्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। हम अपने दैनिक-व्यवहार में भी जाने-अनजाने विधि का अनुसरण करते रहते हैं। विधि-विरुद्ध कार्य कष्टप्रद, असफलतादायक और श्रम को व्यर्थ करने वाले होते हैं। अतः विधि (तरकीब, टैक्नीक) के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए। इसी प्रकार मुहूर्त्त (समय) के साथ भी प्रतिबद्ध रहना श्रेयस्कर होता है। मुहूर्त्त, वस्तुतः पण्डितों की कपोल-कल्पना न होकर, ठोस वैज्ञानिक सत्त्य पर आधारित है। इसका सीधा सम्बन्ध खगोल विज्ञान से है। तारों, ग्रहों नक्षत्रों आदि की गति-विधि और उनकी प्रकाश-किरणों का प्रभाव-स्पर्श मुहूर्त्त को अवश्य प्रभावित करता है।

● मन्त्र द्वारा सिद्ध किया हुआ बहेड़े का पत्ता, और मूल (जड़) भण्डार, तिजोरी, बक्स, अथवा अन्य किसी पवित्र स्थान में रखने से, घर मे धन-धान्य की समृद्धि होती है। यह निश्चित प्रभावशाली और बहुत ही सहज प्रयोग है।

● उदर-विकारों—भूख की कमी, अपच, मन्दाग्नि, पीड़ा, वायु-दोष, कोष्ठबद्धता आदि के निवारण में मन्त्र-सिद्ध बहेड़ा-मूल अतीव लाभकर सिद्ध होती है। इसकी प्रयोग-विधि भी सरल है—रोगी व्यक्ति, भोजन करते समय अपनी दाहिनी जंघा के नीचे (उसे पालथी मारकर बैठना चाहिए) बहेड़े की वह अभिमन्त्रित जड़ (टुकड़ा) दबाकर बैठे। ऐसी स्थिति में किया गया भोजन तान्त्रिक-प्रभाव से, सुपाच्य और पोषक बनकर व्यक्ति को आरोग्य प्रदान करता है।

'बहेड़ा' अभिमन्त्रित करने की विधि है कि पूर्व निमंत्रण देकर, किसी शुभ मुहूर्त्त में उसकी जड़ और पत्ते ले आयें। यदि पेड़ में उपलब्ध हैं तो फूल और फल भी ले लें। पेड़ से उसके अङ्ग प्राप्त करते समय साधक को इस मन्त्र का जप करते रहना चाहिए :—

'ॐ नमः सर्व भूताधिपतये ग्रस ग्रस शोषय भरवीं चाज्ञापति स्वाहा।'

पौधे को लाकर पंचामृत स्नान कराकर, धूप-दीप से पूजा करें। पूजा में बराबर उपरोक्त मन्त्र जप और अन्त में इसी मन्त्र द्वारा 108 जप करके इसी मन्त्र से 21 बार आहुति देकर हवन करें।

29 लक्ष्मणा

सामान्य परिचय :

'लक्ष्मणा' एक सुलभ जड़ी है। तान्त्रिक-विधि से 'रविपुष्य-योग' में अथवा किसी अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में इसे लाकर मन्त्र द्वारा अभिषिक्त कर लें तो यह अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान में सहायक होती है। इसकी प्राप्ति-विधि में यह प्रतिबन्ध है कि इसे लाने के लिए दो व्यक्ति जायें, जिसमें से मुख्य साधक नग्न होकर पौधे को उखाड़े और सहायक-व्यक्ति पास ही दीपक लिए—प्रकाश करता रहे। यह प्रयोग प्रात: बासी-मुँह अन्धेरे में ही किया जाता है। पौधा उखाड़ने और उसे घर तक लाने के मन्त्र क्रमश: इस प्रकार है :—

मन्त्र—'मम् कार्य सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।'

मन्त्र—'ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्ववदनी त्रैलोक्य कास्तरणी हं फट् स्वाहा।'

घर जाकर इस पौधे को स्नान करायें तथा पंचोपचार पूजा करें। पूजनोपरान्त उपरोक्त (दूसरे) मन्त्र का एक माला जप करें। इस प्रकार मन्त्र-सिद्ध 'लक्ष्मणा' अनेक कार्यों में प्रयुक्त होती है। यथा—

● 'लक्ष्मणा' का पंचांग जल में पीसकर गोली बनायें। यह गोली मन्त्र पढ़कर, जिसे भी खिलायी जायेगी—वशीभूत हो जायेगा।

● शारीरिक-दृष्टि से स्वस्थ और समर्थ पति वाली स्त्री—लक्ष्मणा की यह मन्त्राभिषिक्त गोली प्रतिदिन गाय के दूध के साथ 21 दिनों तक लगातार दोनों समय सेवन करें तो—वह गर्भ धारण करती है।

● दीपावली के दिन प्राप्त की गई लक्ष्मणा को मन्त्र द्वारा सिद्ध करके रख लें। इसका चूर्ण सेवन करने से स्त्री सहवास में—पुरुष की कामशक्ति बढ़ जाती है। यह परम बाजीकरणं प्रयोग है।

'ॐ शुभम् पूर्णमेति।'